✽ ओ३म् ✽

हमारी राष्ट्रभाषा और लिपि



लेखक
श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति विद्यामार्त्तण्ड

परिवर्धित तृतीय संस्करण

प्रकाशक
रामगोपाल शालवाले
मन्त्री, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,
महर्षि दयानन्द भवन, नई दिल्ली-१

नवम्बर १९६५] [मूल्य ५० पैसे

❀ ओ३म् ❀

हमारी राष्ट्रभाषा और लिपि



लेखक
श्री पं॰ धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति विद्यामार्त्तण्ड

परिवर्धित तृतीय संस्करण

प्रकाशक
रामगोपाल शालवाले
मन्त्री, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,
महर्षि दयानन्द भवन, नई दिल्ली-१

नवम्बर १९६५] [मूल्य ५० पैसे

विषय-सूची

मुद्रक—सार्वदेशिक प्रेस, दरियागंज, दिल्ली-६



ओ३म्

द्वितीय संस्करण की भूमिका

फ़रवरी १९४६ में मैंने 'हमारी राष्ट्रभाषा' इस नाम से एक लघु पुस्तक केन्द्रीय हिन्दी रक्षा समिति की ओर से छपवाई थी जिसको जनता ने बहुत पसन्द किया। उसकी सब प्रतियां समाप्त हो चुकी हैं किन्तु उस पुस्तक की मांग बढ़ रही है। अतः परिवर्धित रूप में उसे 'हमारी राष्ट्र भाषा और लिपि' के नाम से सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से छपवाया जा रहा है। इसमें अनेक आवश्यक परिवर्तन और परिवर्धन किये गये हैं। मलयालम, उड़िया और आसामी भाषाओं के संस्कृत से सम्बन्ध सूचक उदाहरण दे दिये गये हैं जो प्रथम संस्करण में न थे। राष्ट्र-भाषा और राष्ट्र-लिपि के विषय में कल्पित मनगढ़न्त 'हिन्दुस्तानी' (जिसका न कोई व्याकरण है और न साहित्य) के समर्थक लोग पूज्य महात्मा गान्धी जी के नाम की दुहाई देते रहते हैं अतः उस विषय पर भी विस्तार से विचार करते हुए एक अध्याय इस संस्करण में जोड़ दिया गया है। पहले संस्करण में राष्ट्र-भाषा के विषय में ही विचार किया गया था, राष्ट्र-लिपि के विषय में नहीं। इस संस्करण में राष्ट्र-लिपि के विषय में विचार करते हुए देवनागरी लिपि की विशेषता और सर्वोत्तमता को दिखाने का यत्न किया गया है और इस विषय में अनेक निष्पक्ष मुसलमान विद्वानों के लेखों से भी उद्धरण दिये गये हैं। इस प्रकार आशा है कि यह परिवर्धित संस्करण पूर्वापेक्षया अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

बलिदान भवन, देहली
२९ मार्गशीर्ष, सं० २००५
१३-१२-१९४८

धर्मदेव विद्यावाचस्पति

तृतीय संस्करण की भूमिका

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि 'हमारी राष्ट्रभाषा और लिपि' के द्वितीय संस्करण की प्रायः सब प्रतियां समाप्त हो गई हैं और अब तृतीय संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। इस संस्करण को प्रकाशित करते हुए "क्या अंग्रेजी को राजभाषा बनाना उचित है" इस विषय के विस्तृत विवेचन को परिशिष्ट के रूप में जोड़ दिया गया है क्योंकि एतद्विषयक अराष्ट्रिय आन्दोलन दुर्भाग्यवश जोर पकड़ता जा रहा है और हमारी केन्द्रीय सरकार भी उसके आगे झुकती जा रही है।

आशा है इस परिवर्धित रूप में यह पुस्तिका पूर्व की अपेक्षा अधिक उपयोगी सिद्ध होगी। हम इस राष्ट्रीय कार्य में प्रत्येक देश प्रेमी नर नारी और सरकार का सक्रिय सहयोग चाहते हैं।

आनन्द कुटीर, ज्वालापुर
१५ वैशाख, सं० २०२२ वि०
२७-४-१९६५

धर्मदेव विद्यामार्त्तण्ड



ओ३म्

हमारी राष्ट्र-भाषा और लिपि

ओ३म् इडा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः। ऋ० १।१३।६

राष्ट्र भाषा की आवश्यकता

किसी भी राष्ट्र की वास्तविक उन्नति और उसके समस्त निवासियों में सच्चा प्रेम, संगठन और एकता की भावना को भरने के लिए एक राष्ट्रभाषा का होना आवश्यक है, इस बात से कोई बुद्धिमान् इन्कार नहीं कर सकता। जहां लोग एक दूसरे की बात को समझ ही नहीं सकते, वहां उनमें पारस्परिक प्रेम और सहयोग की भावना का उत्पन्न होना असम्भव है। आर्यावर्त के प्राचीन इतिहास के पढ़ने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में संस्कृत भाषा ऐसी थी जिसको सब लोग समझते और जिसमें वे सब व्यवहार करते थे! समस्त भारतवासियों की भाषा होने के कारण ही संस्कृत भाषा को भारती के नाम से भी पुकारा जाता था। धीरे-धीरे इस भाषा में कई विकार वा अपभ्रंश होते गये और वह प्राकृत के नाम से प्रचलित हो गई जिसको अशिक्षित वा सामान्य शिक्षित नर-नारी प्रयोग में लाते थे। उसके फिर शोरसैनी, मागधी, पाली आदि अनेक भेद होते गये। भारत की वर्तमान अवस्था को ध्यान में रखते हुए हमारी राष्ट्र-भाषा कौन सी है जिसको पूर्णतया हमें अपनाना चाहिये और जिसका प्रसार समस्त राष्ट्रवासियों को

एक सूत्र में पिरोने के लिये करना चाहिये, यह अत्यन्त आवश्यक प्रश्न है जो देश-भक्तों के सम्मुख उपस्थित है और जिस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। विधान-सभा, राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस), अखिल भारतीय राष्ट्रीय समिति, संविधान सभा तथा अन्य सभा-सम्मेलनों के अवसर पर जहां भारत के प्रत्येक प्रान्त के निवासी एकत्रित होकर समस्त भारत की राष्ट्रीय समस्याओं और उन्नति विषयक प्रश्नों पर विचार करने बैठते हैं यह राष्ट्र-भाषा की समस्या उग्र और नग्न रूप में उपस्थित हो जाती है। इस बात को तो कोई सच्चा देशभक्त एक क्षण के लिये भी मानने को उद्यत न होगा कि अंग्रेजी जैसी किसी विदेशी भाषा को हम भारतीय राष्ट्रभाषा के रूप में मान लें और उसमें अपना समस्त कार्यकलाप करें। ऐसा मानना राष्ट्रीयता की भावना पर कुठाराघात करना और दास-मनोवृत्ति की पराकाष्ठा का सूचक होगा। इसके अतिरिक्त यह जानते हुए कि भारत में लगभग २०० वर्षों तक अंग्रेजों का राज्य होते हुए भी १० प्रतिशतक शिक्षितों में अंग्रेज़ी जानने वालों की संख्या केवल दो प्रतिशतक रही है इस प्रकार का प्रस्ताव ही वस्तुतः सर्वथा मूर्खतापूर्ण होगा। तो फिर भारत की राष्ट्रभाषा कौनसी हो सकती है? हिन्दी, उर्दू या हिन्दुस्तानी? इनमें से किसके दावे को पक्षपात रहित होकर स्वीकार किया जा सकता है इस बात का गम्भीरता से विचार करना और एक निर्णय पर पहुंच कर दृढ़ता से उसके प्रसारार्थ समस्त शक्ति को लगा देना राष्ट्रहित की दृष्टि से अत्यावश्यक है। पूर्व इसके कि हम हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी के राष्ट्र-भाषा विषयक दावों की परीक्षा करें यह जान लेना आवश्यक है कि राष्ट्रभाषा

की कसौटियां क्या हैं ? कौन सी भाषा राष्ट्र-भाषा कहला सकती है ?

राष्ट्र-भाषा की कसौटियां

(१) किसी देश की राष्ट्र भाषा वही हो सकती है जिसका उद्गम उसी देश का हो।

(२) राष्ट्र-भाषा के रूप में उसी भाषा को स्वीकार किया जा सकता है जिसको बोलने या समझने वालों की संख्या उस देश में अन्य भाषा-भाषियों की अपेक्षा बहुत अधिक हो।

(३) राष्ट्रभाषा उसी को माना जा सकता है जिसका उस राष्ट्र की संस्कृति और प्राचीन साहित्य के साथ विशेष सम्बन्ध हो।

(४) राष्ट्रभाषा की लिपि सरल, वैज्ञानिक तथा पूर्ण होनी चाहिये।

इन सब दृष्टियों से विचार करने पर संस्कृतनिष्ठ हिन्दी भाषा को ही (जिसे स्वनामधन्य सुधारक शिरोमणि महर्षि-दयानन्द जी सरस्वती ने आर्यभाषा अथवा लोक भाषा के नाम से पुकारा था) राष्ट्र भाषा के रूप में मानना सबसे अधिक संगत प्रतीत होता है। हमें बड़ी प्रसन्नता होती यदि सब भाषाओं की जननी संस्कृत भाषा का आजकल भी वैसा ही प्रचार होता जैसा प्राचीन काल में था जब कि साधारण जुलाहे भी "काव्यं करोमि नहि चारुतरं करोमि, यत्नात्करोमि यदि चारुतरं करोमि। भूपालमौलिमणिमण्डितपादपीठ, हे साहसाङ्क कवयामि वयामि यामि॥" जैसी सुन्दर रचना संस्कृत में कर सकते थे और जब लकड़हारे भी भोज महाराज जैसे अद्भुत

संस्कृतप्रेमी के मुख से 'भारो बाधति' इस प्रकार के संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध प्रयोग को सुनकर बड़ी निर्भयता से 'भारो न बाधते राजन्, यथा बाधति बाधते' जैसा उत्तर दे सकते थे किन्तु दुर्भाग्यवश आज अवस्था सर्वथा परिवर्तित हो चुकी है और मध्यकाल के श्रीशङ्कराचार्य, श्री रामानुजाचार्य, श्री मध्वाचार्य, श्री निम्बार्काचार्य, श्री वल्लभाचार्य आदि आचार्यों और महर्षि दयानन्द जी जैसे महानुभावों के संस्कृत भाषा के उद्धारार्थ विशेष प्रयत्न करने पर भी ऐसी स्थिति नहीं कि अभी १०-१५ वर्षों तक संस्कृत भाषा राष्ट्रभाषा का स्थान ले सके। किन्तु यह बात निश्चित है कि कोई संस्कृतनिष्ठ भाषा ही भारत में राष्ट्र भाषा का स्थान ले सकती है अन्य नहीं, क्योंकि भारत में बोली जाने वाली सभी भाषाओं का संस्कृत से घनिष्ठ सम्बन्ध है, फारसी, अर्बी, अंग्रेजी आदि भाषाओं से नहीं। विषय अत्यावश्यक होने के कारण हम इसके स्पष्टीकरणार्थ बंगाली, गुजराती, मराठी, पंजाबी, मारवाड़ी, कन्नड़, मलयालम, तिलगु, तामिल आदि भाषाओं के संस्कृत से सम्बन्ध-द्योतक रचनाओं के उदाहरण देते हैं; जिनसे इस विषय की यथार्थता में किसी को अणुमात्र भी सन्देह नहीं रहेगा कि सब भारतीय भाषाओं का संस्कृत से विशेष सम्बन्ध है और उसके शब्दों की जिसमें प्रधानता हो ऐसी भाषा ही भारत में राष्ट्रभाषा बन सकती है। सबसे प्रथम हम बंगाली भाषा के कुछ पद्य लेते हैं।

बंगाली और संस्कृत

स्वर्गीय श्री बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय के 'वन्दे मातरम्' नामक स्फूर्तिदायक सुन्दर गीत को कौन देशभक्त भारतीय नहीं जानता?

सुजलां सुफलां मलयजशीतलां, शस्यश्यामलां मातरम्
शुभ्र ज्योत्स्नापुलकितयामिनीं, फुल्लकुसुमितद्रुमदलशोभिनीम्,
सुहासिनीं सुमधुर भाषिणीं, सुखदां वरदां मातरम्। वन्दे मातरम्
इत्यादि शुद्ध संस्कृत के शब्द इस सुन्दर राष्ट्रीय गीत में भरे हुए हैं। इसी प्रकार स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि के निम्न गीत को देखिये—

आमार सकल अंगे तोमार परश
लग्न हइ रहियाछे रजनी दिवस
प्राणेश्वर एइ कथा नित्य मने आनि
राखिब पवित्र करि मोर तनु खानि।
मने तुमि विराजिछ: हे परम ज्ञान
एइ कथा सदा स्मरि, मोर सर्व ध्यान।
सर्व चिन्ता हते आमि सर्व चेष्टा करि
सर्व मिथ्या राखि दिव दूरे परिहरि॥

इसमें सकल, अंग, लग्न, कथा, नित्य, मन, पवित्र, तनु, परमज्ञान, सर्व, ध्यान, चिन्ता, चेष्टा, मिथ्या, दूर, रजनी, दिवस आदि शुद्ध संस्कृत तथा परश, बिराजिछ, परिहरि आदि तत्समशब्द हैं जिनका हिन्दी में भी प्रयोग होता है। ऐसे ही—

बहे निरन्तर अनन्त आनन्द धारा
बाजे असीम नभ माझे अनादि रव
जागे अगण्य रविचन्द्र तारा
ऐकैक अखण्ड ब्रह्माण्डराज्ये
परम एक सेइ राज राजेन्द्र राजे
विस्मित निमेषहत विश्वचरणे विनत
लक्ष शत भक्त चित वाक्य हारा॥

इत्यादि बंगाली गीतों को लिया जा सकता है जिनको संस्कृत हिन्दी जानने वाले बड़ी सुगमता से समझ सकते हैं। बंगाल के मुसलमान भी बंगाली बोलते हैं उर्दू नहीं, यह सब जानते हैं। बंगाल में कम से कम ७५ प्रतिशतक संस्कृत शब्दों का जो हिन्दी भाषा में भी प्रचलित हैं, प्रयोग होता है।

मराठी और संस्कृत

अब मराठी का संस्कृत, हिन्दी से सम्बन्ध जानने के लिए उदाहरणार्थ निम्न प्रकार के गीतों को लीजिये—

पवित्र तें कुल पावन तो देश, जेतें हरिचे दास जन्म घेंती।
कर्म-धर्म त्यांचे जाला नारायण, त्याचेनि पावन तिन्हीं लोक।
यातायाति धर्म नाहीं विष्णुदासा, निर्णय हा ऐसा वेदशास्त्री।
तुका ह्मणें तुम्हीं विचारावे ग्रन्थ, तारिले पतित नेणों किती॥

इत्यादि श्री सन्त तुकाराम जी के अभङ्गों में पवित्र, कुल, देश, जन्म, हरिदास, कर्म-धर्म, नारायण, पावन, लोक, निर्णय, यातायात, ग्रन्थ, पतित, आदि सैंकड़ों संस्कृत के, हिन्दी में पाये जाने वाले शब्द पाये जाते हैं जिन्हें हिन्दी भाषी बड़ी सुगमता से समझ सकते हैं।

गुजराती और संस्कृत

गुजराती का संस्कृत, हिन्दी से कितना निकट का सम्बन्ध है यह जानने के लिये निम्न प्रकार के गुजराती भजनों को उदाहरणार्थ लीजिए जो सुप्रसिद्ध होने के कारण घर-घर में बोले जाते हैं।

वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीड़ पराई जाणे रे।
पर दुःखे उपकार करे तो ये मन अभिमान न आने रे॥

समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, पर स्त्री जैने मात रे
जिह्वा थकी असत्य न बोले, पर धन नव झाले हाथ रे ॥
वण लोभी ने कपट रहित छे, काम क्रोध निवार्या छे।
भणे नर सैयां तेनु दरसन करता, कुल एकोतेर तार्या रे ॥

इसमें वैष्णव जन, पीड़ा, पर दुःख, उपकार, मन, अभिमान, समदृष्टि, तृष्णा, त्याग, परस्त्री, माता, जिह्वा, असत्य, धन, लोभी, कपट रहित, काम, क्रोध, कुल, आदि शुद्ध संस्कृत और दरसन, पराई, निवार्या, हाथ आदि तद्भव शब्द हैं जिनका हिन्दी में भी साधारणतया प्रयोग होता है यह बतलाने की आवश्यकता नहीं ॥

पंजाबी और संस्कृत

अब पंजाब में प्रचलित पंजाबी का–जिनमें सिक्खों के मान्य धर्म ग्रन्थ हैं—संस्कृत हिन्दी से निकट सम्बन्ध जानने के लिए सुखमनी के निम्न वाक्यों को लीजिए।

सिमरउ सिमर-सिमर सुख पावउ
कलि कलेस तन माहि मिटावउ
सिमरउ जासु बिस्वंभर एकै
नाम जपत अगनत अनेकै ॥ सुखमनी पृ० १
ब्रह्मज्ञानी सदा निरलेप
जैसे जल महि कमल अलेप।
ब्रह्मज्ञानी सदा निरदोख
जैसे सूर सरब कउ सोख ॥
ब्रह्मज्ञानी का इहै गुनाउ
नानक जिउ पावक का सहज सुभाउ ॥

सुखमनी (हिन्दी) पृ० ५६-५

यहां सुख, जल, कमल, पावक, ज्ञानी, सहज आदि शुद्ध संस्कृत के और सिमर, तन, विस्वंभर (विश्वम्भर), निरलेप, निरदोख (निर्दोष), सुभाव (स्वभाव) आदि तत्सम शब्दों की भरमार है जिसे संस्कृत हिन्दी जानने वाले बड़ी आसानी से समझ सकते हैं।

मारवाड़ी और संस्कृत

मारवाड़ी का संस्कृत हिन्दी के साथ सम्बन्ध "अनुकम्पा ढाल" के निम्न प्रकार के वचनों से जाना जा सकता है :—

दया दया सब को कहें, ते दया धर्म छै ठीक।
दया ओलखने पालसी, त्यांने मुक्ति नजीक॥
दया तो पहलो व्रत छै, साधु श्रावकरो धर्म।
पाप रुकै जासूं आवता, नवा न लागै कर्म॥
छः काय हणै हणावै नहीं, हणतां भलो न जाणै ताय।
मन वचन काया करी ए दया कहीं जिन राय॥ २

अनुकम्पाढाल ७म

यहां भी दया, धर्म, मुक्ति, साधु श्रावक, व्रत, पाप, मन आदि संस्कृत हिन्दी में प्रचलित शब्दों की भरमार है। इसी प्रकार के उदाहरण आसामी तथा उड़िया आदि भाषाओं के दिये जा सकते हैं किन्तु विस्तारभय से दोनों का एक एक नमूना दिखाना ही पर्याप्त है।

आसामी, उड़िया और संस्कृत

आसामी भाषा में संस्कृत के शब्द कितनी बड़ी संख्या में पायें जाते हैं इसका नमूना निम्न पद्य है—

शत निराशार भरा हृदय आशार प्रतिमा,
प्रिया चारु मोर अकालत काढ़ि निला दयामय ।
करिला ये मोक छलना थोर ॥

इसमें शत, निराशा, हृदय, आशा, प्रतिमा, चारु, प्रिया, अकाल, दयामय, छल आदि शुद्ध संस्कृत के शब्द हैं ।

यही अवस्था उड़िया भाषा की है । उदाहरणार्थ श्री गोपबन्धुदास कृत उड़िया का निम्न पद्य देखिये :—

धन्य का जोरी ते तीर नीलिए परिचित्र ।
देखि के ऊं मूढ़ मानस न हुअई अपवित्र ॥

यहां भी धन्य, तीर, परिचित्र, मूढ़, मानस, अपवित्र आदि शुद्ध संस्कृत के शब्द हैं । मुलतानी, सिन्धी, आदि भाषाओं के संस्कृत हिन्दी से सम्बन्ध द्योतक प्रमाण भी दिये जा सकते हैं किन्तु विस्तारभय से उन्हें देना अनावश्यक है । अब हम दक्षिण भारत की भाषाओं को लेते हैं जिनके विषय में प्रायः कहा जाता है कि इनका सस्कृत के साथ कोई सम्बन्ध नहीं । मेरा दक्षिण भारत में लगभग २० वर्ष के निवास का अपना अनुभवसिद्ध विचार यह है कि ऐसी धारणा जो उत्तर भारत में प्रायः प्रचलित है सर्वथा अशुद्ध है ।

कन्नड़ और संस्कृत

सबसे पहिले मैं कर्णाटक भाषा (कन्नड़) को लेता हूं जिसमें बोलने और लिखने का मैंने विशेषरूप से अभ्यास किया था । यह उद्धरण उत्तरादि मठ के स्वामी श्री सत्यध्यान तीर्थकृत अद्वैत मत विचार नामक पुस्तक से है जो देवनागरी लिपि में छपी है ।

"ई जगत्तिनल्लि सर्वदा सुखवेर नमगागलि दुखवु स्वल्पा-वादरू बेडेंदु सर्वरिन्दलू प्रार्थ्यमानवाद सुखवु जीवन स्वरूपवागिद्दरू अदर मेले प्रकृतिरूपवाद बन्ध (आवरण) इरुवद-रिन्द अनुभवक्के बारदे जीवरु वन्दोन्दु जन्मदल्लि अनेक जन्मापादक-कर्मगलन्नु माडुत्त-माडुत्त आकर्मगलिंद सम्पादित देहानुभवद कालदल्लि नानाविध दुःखवन्नु अनुभविसुव जीवर दुःखनिवृत्ति-गोस्कर श्रवण, मनन, निदिध्यासनादि साधन गलन्नु उपदेशिसुव वेदगल अनुसारवागि भगवदर्पण बुद्धियिंद सदाचार गलन्नु माड़ि अन्तःकरण शुद्धियन्नु होंदि परमात्मन गुणगलन्नु श्रवण माड़ि आ विषयदल्लि अनेक वादिगल विवाद मूलक वरुव सन्देहद निवृत्तियागुवदर सलुवागि 'ब्रह्ममीमांसा' शास्त्रोक्त प्रकार विचारदिन्द तत्व निश्चय माड़िकोंडु जीवनु अक्षय्य सुख वन्नु अनुभविसतक्कद्देन्दु श्री-श्रीगलवरु उपदेशवन्नु माड़िदरु ॥

(अद्वैत मत विचार पृ० १-२)

इस सन्दर्भ में जगत, सर्वदा, सुख, दुःख, स्वल्प, सर्व, प्रार्थ्य-मान, जीव, स्वरूप, प्रकृति, बन्ध, आमरण, अनुभव, जन्म, अनेक जन्मापादक कर्म, देह-नानाविध, निवृत्त, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, अन्तः करण, भगवदर्पण, बुद्धि, सदाचार, परमात्मा, विषय, विवाद, विचार तत्व, निश्चय, अक्षय्य, उपदेश आदि शुद्ध संस्कृत के शब्द हैं जिनमें से सभी का हिन्दी भाषा में भी प्रयोग होता है यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। मेरा विचार है कि कर्णाटक भाषा में कम-से-कम ६५ प्रतिशतक संस्कृत के शब्दों का प्रयोग पाया जाता है।

तिलगू और संस्कृत

आन्ध्र भाषा (तिलगू) और मलयालम में तो यह संस्कृत शब्दों का प्रयोग इससे भी अधिक ७५ प्रतिशतक के लगभग

है। रामायण महाभारत भागवत आदि के तिलगू और मलयालम के अनुवाद पढ़ते और सुनते हुए ऐसे प्रतीत होता है कि हम संस्कृत ग्रन्थों को पढ़ या सुन रहे हों। उदाहरणार्थ एक आन्ध्र भाषा (तिलगू) का श्लोक सुनिये—

दानमु भोगमु नाशमु हूनिकतो मुडुगतलू भुवि धनमुनकम्।
दानमु भोगमु निरुगने दीननि धनमुनक गति तृतीयमे पोसगुन्॥

यहां दान, भोग, नाश, भुवि, धनम्, तृतीय, गति, आदि शुद्ध संस्कृत के शब्दों का प्रयोग जो हिन्दी भाषा में भी सर्वत्र प्रचलित है सर्वथा स्पष्ट है। इसी प्रकार पानी के लिए नीरु (संस्कृत नीरम्) भात के लिये अन्नमु, भोजन के लिये भोजनमु, जल्दी के लिए त्वरगा अथवा शीघ्रमुगा, साफ के लिए स्वच्छमु, कपड़े के लिए वस्त्रमु, पुस्तक के लिए पुस्तकमु, दीये के लिए दीपमु, ग्राम के लिए ग्राममु आदि संस्कृत शब्दों का तिलगू में प्रयोग होता है।

आन्ध्र भाषा के संस्कृत के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध जानने के लिए निम्न पद्य भी उद्धृत करने योग्य है—

सदा शिवं शिखाग्रमध्ये प्रणवमूल ज्योति।
हृदयपुण्डरीकममलं नित्य परं ज्योति॥
अङ्गुष्ठमात्र परम पुरुष दिव्य परं ज्योति।
शृङ्ग मध्ये शुंशुमार नित्य परं ज्योति॥
वासना क्षयादि त्रिगुणातीत नीलं ज्योति।
सासिरारु जलज्ज्योति साम्ब शिव स्वरूपा॥
मात्रिकाक्षराग्र राम तारकाग्नि तेजसे।
नित्य मङ्गलाङ्गमूल प्रणव मन्त्र स्वरूपिणे॥
(दरबार राग श्री षडक्षरी दीक्षित प्रणीत)

मलयालम और संस्कृत

मलयालम भाषा में भी संस्कृत के शब्द बहुत अधिक हैं इनका अनुपात यदि ७५ से ८० प्रतिशतक कहा जाए तो भी अत्युक्ति न होगी। उदाहरणार्थ, केरल के सुप्रसिद्ध महाकवि वल्लाथोल के निम्न पद्य को देखिये।

गीतक्कु मातावाय भूमिये दृढ़ मितु मतिरियोह कर्मयोगिये प्रसविक्कू हिमवद् विन्ध्याचल मध्यदेशत्ते काणू शममे शीलिच्चेलुवितरम् सिंहत्तिने। गंगयारोलुकुन्न नाहिले शरिक्किन्न मंगलम् कायकुम् कल्पपादप मुण्डायून्न नमस्ते गततर्ष। नमस्ते दुराधर्ष नमस्ते सुमहात्मन्। नमस्ते जगद् गुरो। इस छोटे से पद्य में गीत, भूमि, दृढ़, मति, कर्मयोगी, प्रसव, हिमवद्, विन्ध्याचल, मध्यदेश, शम, शील, सिंह, मङ्गलम्, गततर्ष, दुराधर्ष, सुमहात्मन् नमस्ते, जगद् गुरो आदि बहुत से विशुद्ध संस्कृत के शब्द, विद्यमान हैं।

तामिल और संस्कृत

तामिल को सर्वथा अनार्य भाषा समझा जाता है और इसका संस्कृत से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं माना जाता किन्तु यह विचार भी सर्वथा अशुद्ध है। तामिल की पुस्तकों में "श्री राम मिथुलिम। नगर चेहूं शिवधनुषै अतिशीघ्र वड़ैथु जनक पुत्रि सीता देव्यै विवाहं मुदिन्दूं प्रजैकल दम्पतिकुलै अति संतोष तुड़न अंगि हारं शैदनत्" इत्यादि वाक्य पाये जाते हैं जिनमें नगर, शिवधनुष, अतिशीघ्रम्, विवाह, प्रजा, दम्पति, संतोष आदि संस्कृत शब्दों का प्रयोग स्पष्ट है इसी प्रकार ग्रामम्, पट्टणम् (पत्तनम्-शहर) जलम्, दूरम्, पुस्तकम्, अदिहम् (अधिकम्) पशु, मात्रम् (केवल), आमाम् (आम्-हां), वार्तै (वार्ता)

शीघ्र (शीघ्रम्) (कुटी) शुद्म (शुद्धम्) कै (कर) पात्तिरम् (पात्रम) पलम् (फलम्) पाठम् (पाठ) कोपम् (कोपः) समाचारम्, कदै (कथा) रत्तम् (रक्तम्) कर गोषम् (कर घोषः) आज्ञै, परीचै, मासम्, वर्षम्, कूड़म् (कूरः) शिंगम् (सिंह) कोटि कम्पम् इत्यादि हजारों संस्कृत के शब्द पाये जाते हैं। जिनका अनुपात कम से कम ५० प्रतिशतक होगा।

भारतीय प्रसिद्ध भाषाओं के इस सिंहावलोकन से इस बात में जरा भी संदेह नहीं रहता कि संस्कृत निष्ठ हिन्दी ही भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है क्योंकि संस्कृत के शब्द सभी भारतीय भाषाओं में बहुत बड़ी संख्या में पाये जाते हैं जिनका हिन्दी भाषा में वैसा ही प्रयोग होता है। सन् १६३१ के सरकारी आंकड़ों के अनुसार भारत के ३५ करोड़ मनुष्यों में से १२०२३६०० मनुष्य हिन्दी बोलते और ११ करोड़ हिन्दी को समझने वाले थे अर्थात् हिन्दी समझने वालों की संख्या लगभग २३ करोड़ व ६७ प्रतिशतक थी। इस प्रकार का दावा भारत की और किसी भाषा के विषय में नहीं किया जा सकता।

सन् १६४१ के जो आंकड़े प्राप्त हुए हैं उसके अनुसार भारत में भिन्न भिन्न भाषाएं बोलने वालों की संख्या निम्न प्रकार है।

हिन्दी	१३ करोड़ ६३ लाख
वंगला	४ करोड़ ६३ लाख
तेलगू	२ करोड़ ३६ लाख
मराठी और तामिल	१ करोड़ ८८ लाख
कन्नडी	१ करोड़ ३ लाख
उड़िया	१ करोड़ १ लाख

गुजराती	६६ लाख
अंग्रेजी	२ लाख

इस प्रकार भो संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का राष्ट्र भाषा होने का दावा सर्वथा पुष्ट होता होता है। श्री पं० जवाहरलाल जी ने "भाषाओं का प्रश्न" विषयक अपने लेख में कहा है कि भारत के नगरों में उर्दू बोली जाती है और देहातों में हिन्दी। उर्दू केवल नगरों की भाषा है और हिन्दी नगर और गांव दोनों की।

यद्यपि यह उपर्युक्त कथन भी केवल उत्तर भारत के कुछ शहरों पर ही लागू होता है अन्यत्र नहीं पर इससे भी हिन्दी भाषा का राष्ट्रभाषा होने का दावा पुष्ट होता है क्योंकि भारत १० हजार नगर और ७ लाख गांव हैं। भारत की चौथाई जनता-नगरों में और तीन चौथाई गांवों में रहती है। अब आप ही सोचिये कि भारत की साधारण जनता अधिकतर कौन सी भाषा बोल या समझ सकती है।

सन् १९६१ के भिन्न भाषाभाषियों के जो आंकड़े प्रकाशित हुए हैं उनका विश्लेषण इस प्रकार है जो 'हिन्दुस्तान' नई देहली दैनिक के ५ फर्वरी १९६५ के अंक से उद्धृत किया जाता है।

"१९६१ की जनगणना की रिपोर्ट का विश्लेषण करने से मालूम हुआ है कि हिन्दी देश की ३५ प्रतिशतक यानी १३ करोड़ ३४ लाख ३० हजार आबादी की भाषा है। यदि बिहारी और छत्तीस गढ़ी को भी हिन्दी में शामिल किया जाए तो हिन्दी भाषियों की कुल सख्या ३६ करोड़ १० लाख है। इस संख्या में वे सम्मिलित नहीं जिनकी मातृभाषा तो हिन्दी नहीं परन्तु जो हिन्दी वोल सकते हैं। ऐसे लोगों की सख्या ९३ लाख है।

तिलगू भाषी	३७६६००००
बंगला भाषी	३३४८००००
मराठी भाषी	३३२८००००
उर्दू	२३३२००००
गुजराती	२०३०००००

(हिन्दुस्तान ५ फरवरी सन् १९६५)

मुसलमान और हिन्दी

जो लोग अरबी फारसी शब्दों से लदी उर्दू को राष्ट्र भाषा बनाने के पक्षपाती हैं (जिस दावे की निस्सारता उपर्युक्त विवेचन से सर्वथा स्पष्ट है क्योंकि बंगाली, गुजराती, मराठी पंजाबी, मारवाड़ी आदि भाषाओं का अरबी फारसी व उर्दू से कोई सम्बन्ध नहीं) उनकी ओर से कई बार यह कहा जाता है कि हिन्दी राष्ट्र भाषा इसलिये नहीं बन सकती क्योंकि वह सिर्फ हिन्दुओं की जबान है पर यह बात भी ऐतिहासिक तथा साहित्यिक दृष्टि से विचार करने पर सर्वथा अशुद्ध प्रमाणित होती है। वर्तमान संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के निर्माण और विस्तार में मुसलमान लेखकों और कवियों का भी बहुत बड़ा भाग रहा है। प्रायः यह माना जाता है कि हिन्दी यह नाम भी मुसलमानों का ही रक्खा हुआ है। मीर खुसरो ने हिन्दी का जो कोष बनाया था उसमें संस्कृत के कठिन २ शब्द भी पाये जाते हैं। सय्यद इन्शा अल्लाखां जैसे कट्टर मुसलमान ने जिस तरह की भाषा का प्रयोग किया उसके निम्न नमूने ध्यान में रखने योग्य हैं :—

"सिर झुका कर नाक रगड़ता हूं उस अपने बनाने वाले के सामने जिसने हम सब को बनाया और बात की बात में वह कर दिखाया कि जिसका भेद किसी ने न पाया।"

"इस सिर झुकाने के साथ ही दिनरात जपता हूं उस अपने दाता के भेजे हुए प्यारे को जिसके लिए यों कहा है कि जो तू न होता तो मैं कुछ न बनाता।"

"किसी देश में किसी राजा के घर एक बेटा था। उसे उसके मां बाप और सब घर के लोग कुंवर उदयभान कह कर पुकारते थे। सचमुच उसके जोबन की जोत में सूरज की एक सोत आ मिली थी उसका अच्छापन और भला लगना कुछ ऐसा न था जो किसी के लिखने और कहने में आ सके।"

(हिन्दवी छुट)

इसमें दिनरात, जपता, दाता, राजा, जोबन (यौवन), जोत सोत (स्रोत) आदि संस्कृत के अथवा तद्भव शब्द बहुत बड़ी संख्या में पाये जाते हैं अरबी फारसी के शब्द नहीं।

रसखान नामक तुर्क की (जो १५८३ से १६२८ सन् तक रहा) रचना में हिन्दी के लालित्य को देखकर किसको आश्चर्य न होगा! श्री कृष्ण की भक्ति में मस्त होकर वे लिखते हैं :—

पाहन हौं तो वही गिरि को, जो धर्यो कर छत्र पुरन्दर कारन।
जो खगहौं तो बसेरो करौं, मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन।
बैन वही उनको गुन गाइ औ कान वही उन बैन सों सानी।
हाथ वही उन गात सरैं, अरु पाइ वही जु वही अनुजानी॥
जान वही उन प्रान के संग, औ मान वही जो करै मनमानी।
त्यों रसखानि, वही रसखानि, जु है रसखानि सो है रसखानी॥

(भक्ति कुसुमाञ्जलि पं० लक्ष्मीधर शास्त्री एम. ए. कृत पृ० ३० में उद्धृत)

इसमें गिरि, कर, छत्र, पुरन्दर, खग, कालिन्दी, कूल, कदम्ब,

सङ्ग, मान और शुद्ध संस्कृत और पाहन (पाषाण), धारन, गात, प्रान, आदि तत्सम शब्दों का प्रयोग दर्शनीय है।

इसी प्रकार सम्राट् अकबर के सेनापति अब्दुल रहीम खान १५८३ से १६२८ सन् तक) की निम्न प्रकार की रचनाएं हिन्दी भाषा के सौन्दर्य की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम पर काज हित, सम्पति सुचहि सुजान॥
जिहि रहीम चित आपनों, कीन्हों चतुर चकोर।
निशिवासर लागे रहौ, कृष्णचन्द की ओर॥

यहां तरुवर, फल, सरवर, सम्पत्ति, चकोर, चित, निशिवासर, आदि संस्कृत अथवा तत्सम शब्दों की कैसी सुन्दर छटा है। ऐसी ही मुहम्मद जायसी की रचनाओं में है। कबीरजी का जन्म से मुसलमान होना अत्यन्त सन्दिग्ध होने के कारण उनकी सुन्दर रचनाओं का उल्लेख इस प्रसंग में जान बूझकर नहीं किया गया। इन उपर्युक्त तथा अन्य खुसरो आदि अनेक उत्तम लेखकों और कवियों द्वारा हिन्दी भाषा के साहित्य को जो गौरव प्राप्त हुआ है इसके लिये सबको उनके प्रति विशेष रूप से कृतज्ञ होना चाहिये। इनकी ललित रचनाएँ 'हिन्दी सिर्फ हिन्दुओं की ज़बान है' ऐसा मानने वालों का मुंह तोड़ जवाब हैं।

वर्तमान मुसलमान हिन्दी लेखकों में श्री जहूरबख्श का नाम उल्लेखनीय है जो अपनी मनोहर रचनाओं से हिन्दी भाषा के साहित्य को चमकाते रहे हैं। उनकी लालित्य पूर्ण हिन्दी रचना के कुछ नमूने हम 'आर्य महिला रत्न' नामक कलकत्ता से प्रकाशित अत्युत्तम पुस्तक से उद्धृत किये बिना नहीं रह सकते।

"भारतवर्ष के आदर्श के विषय में क्या कहा जाये ? जिधर दृष्टि डालिये क्या धार्मिकता, क्या परहित कातरता, क्या वीरता और क्या देशभक्ति सभी के एक से एक बढ़कर आदर्श आपको मिलेंगे जिनकी उपमा संसारमें और कहीं नहीं मिलती। ये आदर्श केवल पुरुषों में ही नहीं, स्त्रियों में भी पाये जाते हैं। संसार जानता है कि भारतवर्ष के समान पवित्र आचरण वाली सती, साध्वी स्त्रियां और किसी भी देश में नहीं हुई। भारतवर्ष के लिये यही बड़े गौरव का विषय है कि उसकी पुत्रियों ने समय समय पर अपने पति, देश और धर्म के लिये अपूर्व आत्मत्याग और कष्ट सहिष्णुता का परिचय दिया है। यहां की स्त्रियां केवल पतिव्रता ही नहीं होतीं, वीर और देशभक्त भी होती हैं। महारानी दुर्गावती और लक्ष्मीवाई ने अपनी देशभक्ति का कैसा प्रमाण दिया था, समर क्षेत्र में कैसी वीरता प्रदर्शित की थी— यह कौन नहीं जानता ? यहां की देवियां देश के लिये कैसा आत्म-बलिदान कर सकती हैं यह भी शिक्षित समाज से छिपा नहीं।" इत्यादि (आर्य महिलारत्न पृ० ४७)

इस ललित और हृदयंगम हिन्दी की सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता पं० जवाहरलाल नेहरू जी की हिन्दी से तुलना करें तो आकाश पाताल का अन्तर दृष्टिगोचर होगा। श्री पं० जवाहरलाल जी 'मेरी कहानी' के नाम से श्री हरिभाऊ उपाध्याय द्वारा अनूदित आत्मचरित की भूमिका में लिखते हैं 'मेरी कहानी क्या है ? इसमें पिछले कुछ बरसों की खास २ घटनाओं का संग्रह नहीं है, इसके लिखने का यह मकसद था भी नहीं। यह तो समय समय पर मेरे अपने मन में उठने वाले खयाल और जजबात का और बाहरी वाकयात का उन पर किस तरह और क्या असर पड़ा उसका दिग्दर्शनमात्र है। इसमें मैंने अपने मानसिक

विकास को —अपने खयालात के उतार चढ़ाव को—सही चित्रित करने की कोशिश की है। मैं इसमें कहां तक कामयाब हुआ, यह कहना मेरा काम नहीं। लेकिन खास बात यह नहीं है कि क्या गुज़रा, बल्कि यह है कि वह मुझे कैसा लगा और उस का मुझ पर क्या असर पड़ा। यही इस किताब की अच्छाई और बुराई जानने की कसौटी है।' इस सन्दर्भ में यदि मान्य पण्डित जी खास २ की जगह विशेष २, खयालात, जजबात और वाकयात की जगह विचार, भावना, घटना तथा मकसद की जगह उद्देश्य शब्द का प्रयोग करते तो उनकी रचना का सौन्दर्य कम न होता बल्कि अधिक ही हो जाता किन्तु हिन्दुस्तानी नामक खिचड़ी भाषा के नाम से जो अधिकतर उर्दू फारसी अरबी शब्दों के अपनाने की प्रवृत्ति अनेक राष्ट्र नेताओं में चल पड़ी है उसका स्पष्ट परिणाम ऐसे लेखों में दिखाई पड़ रहा है।

श्री पं० जवाहरलाल जी हिन्दी भाषा के प्रामाणिक व उत्तम लेखक होने का दावा भी नहीं करते और न उस पर उनका पूर्ण आधिपत्य है किन्तु श्री हरिभाऊ उपाध्याय जी जैसे अत्यन्त प्रसिद्ध हिन्दी लेखक इस 'हिन्दुस्तानी' के शौक में जिस तरह की विचित्र भाषा का प्रयोग कर रहे हैं उसका नमूना देखिये। आप अपनी भूमिका में पुस्तक में प्रयुक्त भाषा के विषय में लिखते हैं:—

"मैं सरल और बोलचाल की भाषा—जिसे बापू जी ने 'हिन्दी हिन्दुस्तानी' नाम दिया है और जो असली राष्ट्र-भाषा कही जा सकती है—लिखने का पक्षपाती हूँ। इस पुस्तक के जरिये मैं उसका एक नमूना पेश करना चाहता था। लेकिन अफ़सोस है कि प्रकाशन की जल्दी और अपनी बीमारी की

वजह से मैं शुरू से आखिर तक उसे निबाह न सका।......... इसलिये कृपालु पाठकों से मेरा अनुरोध है कि जो भूलें उनकी निगाह में आवें उन पर मेरा ध्यान दिलाने की मेहरबानी करें।... .....यह हमारी किताब सिर्फ एकाध आखिरी बात और चन्द मामूली रद्दोबद्दल के अलावा जेल में ही लिखी गई है। इसके लिखने का खास मकसद यह था कि मैं किसी निश्चित काम में लग जाऊं जो कि जेल जीवन की तहनाई के पहाड़ से दिन काटने के लिये बहुत जरूरी होता है :"

'हिन्दुस्तानी' के नाम से जो खिचड़ी भाषा बनाई जा रही है और उससे शुद्ध संस्कृतबहुल हिन्दी पर जो कुठाराघात किया जा रहा है उसका नमूना कांग्रेस मन्त्रिमण्डल द्वारा बिहार, मद्रास तथा अन्य प्रान्तोंमें तय्यार कराई गई हिन्दुस्तानी रीडरों में मिल सकता है। बिहार में उस समय के शिक्षा सचिव डा० सय्यद महमूद के नाम से जो 'महमूद सीरीज' की रीडरें छपवाई गईं उनमें श्री रामचन्द्र जी का वृत्तान्त इन शब्दों में था :—

"बहुत पुराने जमाने की बात है कि अयोध्या में दशरथ नाम के एक राजा राज करते थे, उनके राज में रैयत बड़ी खुशी के साथ अपनी जिन्दगी बिताती थी। बादशाह इतने अच्छे थे कि वे कभी किसी को किसी चीज की तकलीफ न होने देते थे। सभी रियाया उनसे खुश थी। बादशाह के तीन रानियां थीं।

.... बादशाह ने उन्हें पढ़ाने के लिये एक गुरु बहाल कर दिया। गुरुजी सभी लड़कों के पढ़ाने के तरीके से पूरे वाकिफ थे। वे हर घड़ी इन्हें अच्छे रास्ते पर चलने की तालीम देते थे। कुछ ही दिनों में बादशाह के चारों बेटों ने सभी तालीम अच्छी तरह सीखली। (श्री रामचन्द्र जी पृ० २)

इन रीडरों के प्रथम संस्करण में महारानी सीता के लिये 'बेगम सीता' और महर्षि वाल्मीकि और वसिष्ठ के लिये मौलाना बालमीकि और मौलाना वसिष्ठ का प्रयोग किया गया था।

मद्रास सरकार की ओर से जो हिन्दुस्तानी रीडरें बालक-बालिकाओं को शिक्षा देने के लिये तय्यार कराई गई थीं उनमें पाठ के स्थान पर सबक़, पुस्तक के स्थान पर 'किताब', अक्षरों के स्थान पर हरूफ और पाठशाला व विद्यालय के स्थान पर मदरसा आदि उर्दू फारसी शब्दों की भरमार देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य और दुःख होता था। भाषा को सरल बनाया जाए; जो उर्दू के शब्द बोलचाल की भाषा में बहुत प्रयुक्त होने लगे हैं उन्हें अपना लिया जाए इससे तो हम सब सहमत हो सकते हैं किन्तु इसका यह अर्थ कदापि न होना चाहिये कि येनकेन प्रकारेण हिन्दू मुस्लिम एकता लाने के राजनेतिक उद्देश्य से हिन्दी में से संस्कृत भाषा के शब्दों को चुन चुनकर निकाल दिया जाए और उनके स्थान पर अरबी फारसी के शब्दों की भरमार कर दी जाए। 'हिन्दुस्तानी' के नाम से हमारी भाषा को खराब करने की वर्तमान प्रवृत्ति, जो अनेक राष्ट्रीय नेताओं के अन्दर पाई जाती है, वह बड़ी घातक प्रतीत होती है। इसके द्वारा अरबी, फारसी के शब्दों को हमारी भाषा पर लादा जा रहा है और नाम मात्र के दो चार संस्कृत शब्दों का प्रयोग करके वस्तुतः हिन्दी की हत्या की जा रही है जिसका परिणाम बड़ा भयंकर होगा।

हिन्दी में संस्कृत या उसके तत्सम, तद्भव शब्दों की प्रधानता होती है और देवनागरी लिपि में लिखी जाती है इसके विपरीत उर्दू में अरबी फारसी से लिये शब्दों की

प्रधानता होती है और वह फारसी लिपि में लिखी जाती है। सैयद इंशा अल्लाखां ने उर्दू के उद्गम के बारे में लिखा था कि "शाहजहानाबाद के शिष्ट लोगों ने एक मत होकर अन्य अनेक भाषाओं से दिलचस्प शब्दों को चुना और कुछ शब्दों तथा वाक्यों में हेर फेर करके अन्य भाषाओं से अलग एक नई भाषा बना ली, और उसका नाम उर्दू रख दिया है।" इस प्रकार उर्दू विदेशियों वा विधर्मियों विशेषतः मुगल दरबार द्वारा घड़ी हुई भाषा है जो राष्ट्रभाषा कहलाने के सर्वथा अयोग्य है। सर सय्यद अहमद खां ने इसके विषय में लिखा कि "जो यह ज़बान खास बादशाही बाजारों में मुरव्वज थी इस वास्ते उसको जबान उर्दू कहा करते थे और बादशाही अमीर उमरा इसी को बोला करते थे गोया कि हिन्दुस्तान के मुसलमानों की यही जबान थी।"

(असारुस्सनादीद भाग ४, पृ० ६-१०, सन् १८४७)

पर उर्दू के विषय में यह दावा भी अशुद्ध है कि वह ७-८ करोड़ मुसलमानों की भाषा है क्योंकि पंजाब और युक्तप्रान्त के १, १॥ करोड़ मुसलमानों को छोड़कर बंगाल गुजरात, महाराष्ट्र, दक्षिण भारत आदि सब प्रान्तों के मुसलमान अपनी अपनी प्रान्तीय भाषाएं ही बोलते हैं न कि उर्दू।

सुप्रसिद्ध मुस्लिम प्रचारक ख्वाजा हसन निजामी ने इस विषय में कुरान के हिन्दी अनुवाद की भूमिका में लिखा है कि—

"हिन्दी जबान आगरा अवध और रुहेल खण्ड और सूबा बिहार और सूबा सी. पी. और हिन्दुओं की अक्सर देसी रियासतों में मरूवज है। गोया बंगाली और बर्मा और गुजराती और मराठी वगैरह सब हिन्दुस्तानी जबानों से ज्यादाह रिवाज

हिन्दी यानी नागरी जवान पढ़ते हैं और यही जवान लिखते हैं यहाँ तक कि तक़रीबन एक करोड़ मुसलमान भी जो सूबा यू० पी० और सूबा सी० पी० और सूबा विहार के देहात में रहते हैं या हिन्दुओं की रियासतों में बतौर रियाया के आबाद हैं हिन्दी के सिवा और कोई जवान नहीं जानते।"

हिन्दुस्तानी क्या है

इस प्रसंग में 'हिन्दुस्तानी' के लक्ष्य और स्वरूप पर भी विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है जिसे कांग्रेस के कुछ नेता राष्ट्र भापा बनाना चाहते हैं। सब जानते हैं कि विहार एक हिन्दी भाषा भाषियों की अधिकता वाला प्रान्त है। श्री बलदेव सहाय जी नामक एक सज्जन ने २४ नवम्बर सन् १९३६ को पटना यूनिवर्सिटी के सीनेट में देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्या बनाने पर जोर दिया और हिन्दुस्तानी की व्याख्या भी कुछ ऐसी की गई जिससे विहार को कुछ महत्व मिल गया। उसमें कहा गया कि—

'हिदुस्तानी से इस दफ़ा में वह ज़वान मुराद है जो बिहार के हिन्दू मुसलमान आम तौर पर बोलते हैं और जो नागरी या उर्दू रस्म ख़त में लिखी जाती है।' ('उर्दू' जुलाई सन् १९३७ पृ० ६५६), पर इससे विहार की उर्दू कमेटी वालों को सन्तोष न हुआ और उन्होंने सारे भारत के उर्दू प्रेमियों को जुटा कर निश्चित कर दिया :—

'हिन्दुस्तानी से मुराद वह ज़बान है जो इस मुल्क की हिन्दू मुसलमान कौमों के मेलजोल और एक दूसरे की तहज़ीब से मुतासिर होने से बनी है, जिसे शुमाली हिन्द के बाशिन्दे आम तौर से बोलते हैं और हिन्दुस्तान के दूसरे हिस्सों के रहने वाले समझते हैं, जो अरबी फ़ारसी और संस्कृत के नामानूस

लफ्जों से खाली है और जो उर्दू, देवनागरी या दूसरे रस्म खत में लिखी जाती है।'

("उर्दू" पृ० ६६१)

२२ मार्च सन् १९३८ को बिहार के उस समय के शिक्षा मन्त्री डा० सय्यद महमूद की कृपा से पटना विश्वविद्यालय के सिंडिकेट के कमरे में एक सभा हुई जिसमें हिन्दुस्तानी के विषय में यह कहा गया कि—

"हिन्दुस्तानी वहज़बान है जोशुमाली हिन्द में मामूली बोल चाल में और आपस के मेल मिलाप के वक्त इस्तमाल की जाती है और जो हिन्दी और उर्दू की मुश्तरक बुनियाद है।"

("उर्दू" अप्रैल सन् १९३८ पृ० ४५५)

बिहार की उस हिन्दुस्तानी कमेटी ने उसी समय एक हिन्दुस्तानी लुग़त (डिक्शनरी) का बीड़ा उठा लिया और उसका भार अंजुमन तरक्की उर्दू के प्राण स्वरूप मौलाना अब्दुलहक़ को सौंप दिया। जिससे यह स्पष्ट है कि अब हिन्दुस्तानी के नाम से उर्दू को ही भारतीयों पर लादने का यत्न किया जा रहा है। इसमें यदि किसी को अब भी सन्देह हो तो उन्हें याद रखना चाहिये कि आल इण्डिया मुस्लिम एजुकेशनल कान्फ्रेंस में जो जुलाई सन् १९३७ में अलीगढ़ में हुई थी यह तजवीज पेश की गई थी कि 'उर्दू' की जगह 'हिन्दुस्तानी' नाम चालू किया जाए। साथ ही उसमें कहा गया था कि "यह समझना भी दुरुस्त नहीं कि इस तजवीज़ के पेश करने वालों का यह मक्सद है कि हम अपनी ज़बान में कोई ऐसी तबदीली कर लें जिससे वह हिन्दी या हिन्दवी के करीब बन जाए। हाशा व कला इस किस्म की कोई बात नहीं

है बल्कि बयीनः उसी उर्दू उसी ज़बान, उसी बोलचाल को जो हम बोलते हैं हम हिन्दुस्तानी कहते हैं।

(अलीगढ़ मैगज़ीन जुलाई सन् १६३७)

यह सचमुच दुःख की बात है कि हमारे कई राष्ट्रीय नेता इस हिन्दुस्तानी के चक्कर में बुरी तरह फंस गये हैं और इस प्रकार विशुद्ध हिन्दी की उपेक्षा कर रहे हैं। यह कथन कि प्रत्येक भारतीय हिन्दी उर्दू दोनों भाषाओं और देवनागरी और फ़ारसी दोनों लिपियों को सीखे यह यद्यपि देखने में सर्वथा निर्दोष प्रतीत होता है तथापि अव्यवहार्य होने के अतिरिक्त इस दृष्टि से हानिकारक भी है कि इसके अनुसार हिन्दू तो उर्दू सीखना प्रारम्भ कर देंगे पर मुसलमानों में से बहुत ही कम हिन्दी सीखने का यत्न करेंगे जिसका परिणाम यह होगा कि कुछ वर्षों बाद उर्दू जानने वा बोलने वालों की संख्या बहुत बढ़ जाएगी और तब उसके राष्ट्रभाषा होने का दावा डंके की चोट से किया जाएगा। प्रत्येक बालक बालिका पर हिन्दी उर्दू दोनों भाषाओं का उसकी अपनी प्रान्तीय भाषा तथा अंग्रेज़ी के अतिरिक्त भार लादना भी सर्वथा अनुचित है। "हिन्दुस्तानी तालीमी संघ', यह नाम ही जिस मनोवृत्ति का सूचक है हम उसका कभी अभिनन्दन नहीं कर सकते। देवनागरी लिपि अत्यन्त वैज्ञानिक और पूर्ण लिपि है जिसका मुकाबिला फ़ारसी या रोमन लिपि किसी अवस्था में भी नहीं कर सकतीं।

महात्मा गान्धी जी के नाम का दुरुपयोग

भारत की राष्ट्रभाषा संस्कृतनिष्ठ हिन्दी और लिपि देवनागरी होनी चाहिये इस विषय को अब प्रायः सभी प्रान्तों के निष्पक्षपात विचारक और नेता स्वीकार करने लगे हैं।

भारतीय संविधान परिषद् के सदस्यों का बहुमत इसी विचार का समर्थक है क्योंकि पंजाबी, मराठी, गुजराती, बंगाली, उड़िया, तिलगू, आसामी, कन्नड, तामिल मलयालम आदि सभी प्रान्तीय भाषाओं में संस्कृत के शब्द पाये जाते हैं। देवनागरी लिपि न केवल सबसे अधिक शुद्ध वैज्ञानिक और सरल है प्रत्युत भारत की सब लिपियों की वर्णमाला का इस के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है।

" यह खेद की बात है कि प्रायः सर्वसम्मत प्रस्ताव का विरोध पूज्य महात्मा गांधी जी के नाम की दुहाई देकर किया जाता है। मैं इसे पूज्य महात्मा जी के नाम का सर्वथा दुरुपयोग समझता हूँ। उनके लेखों और ग्रन्थों से संकलित निम्न उद्धरणों द्वारा यह विषय स्पष्ट हो जायगा। सबसे प्रथम मैं राष्ट्र लिपि विषयक उनके विचारों को लेता हूँ।

पूज्य महात्मा जी के राष्ट्र लिपि विषयक विचार

"सचमुच मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि भारत की तमाम भाषाओं के लिए एक ही लिपि का होना फ़ायदेमन्द है और वह लिपि देवनागरी हो सकती है। यदि तमाम व्यवहार्य और राष्ट्रीय कामों के लिये इन सब लिपियों के स्थान पर देवनागरी का उपयोग होने लग जाय तो वह एक भारी प्रगति होगी। उससे हिन्दू भारत सुदृढ़ हो जायगा और भिन्न २ प्रान्त एक दूसरे के अधिक निकट आ जायेंगे।

हमें एक ऐसी सर्व सामान्य लिपि की जरूरत है जो जल्दी से जल्दी सीखी जा सके और देवनागरी के समान सरल जल्दी से सीखने योग्य और तैयार लिपि दूसरी कोई है ही नहीं॥
नवजीवन २१।६।२७॥

१८।२।३६ के हरिजन सेवक में पूज्य महात्मा जी ने लिखा :—

मैं अपनी यह राय तो जाहिर कर चुका हूँ कि अगर हिन्दुस्तान में सर्वमान्य हो सकने वाली कोई लिपि है तो वह देवनागरी है।

३।३।३७ के हरिजन में महात्मा जी ने लिखा है—

"देवनागरी को सारे हिन्दुस्तान की सर्वमान्य लिपि होना चाहिये क्योंकि विविध प्रान्तों में प्रचलित ज्यादातर लिपियां मूलतः देवनागरी से ही निकली हैं। और इसलिये उनके लिये उसे सीखना ही सबसे ज्यादा आसान है।

२६।४।४२ के हरिजन सेवक में पूज्य महात्मा जी ने कुछ प्रश्नोत्तर दिये हैं जिनमें से लिपि विषयक निम्न प्रश्न और उसका उत्तर इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है।

प्रश्न—भारतीय भाषाओं को व्यक्त रखने की सबसे ज्यादा योग्यता नागरी लिपि में है। और आजकल की फारसी लिपि इस काम के लिये बहुत ही दोषपूर्ण है। क्या यह सच नहीं है। इसका उत्तर देते हुए महात्मा जी ने लिखा कि "आप ठीक कहते हैं।"

इस प्रकार महात्मा जी के देवनागरी लिपि की श्रेष्ठता और उसे राष्ट्र लिपि मानने विषयक विचार स्पष्टतया ज्ञात होते हैं। अब राष्ट्र भाषा के विषय में उनके ग्रन्थों और लेखों से उदाहरण देखिये।

राष्ट्र भाषा का प्रश्न

२३।८।२८ के नवजीवन में पूज्य महात्मा जी ने लिखा था, "हिन्दुस्तान के तीस करोड़ आदमियों में से १२ करोड़ हिन्दी

बोलते हैं और दूसरे ८ करोड़ उसे समझ लेते हैं तथा संसार की सब से अधिक बोली जाने वाली भाषाओं में हिन्दी का तीसरा स्थान है और यह बात इसका काफी सफल कारण है कि सब कोई हिन्दी सीख लें।"

मद्रास की हिन्दी प्रिषत् में भाषण करते हुए पूज्य महात्मा जी ने ठीक ही कहा था—"अगर स्वराज्य करोड़ों भूखों मरने वालों, करोड़ों निरक्षरों, बहिनों और दलितों व अन्त्यजों का हो और इन सब के लिए होने वाला हो तो हिन्दी ही एक मात्र राष्ट्र भाषा हो सकती है।" (राष्ट्र भाषा, पृ० ३५ से उद्धृत)

२० अप्रेल सन् १९३५ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन इन्दौर के सभापति पद से भाषण देते हुए पूज्य महात्मा गांधी जी ने कहा था "हिन्दी को हम राष्ट्र भाषा मानते हैं। यह राष्ट्रीय भाषा होने के लायक है। वही भाषा राष्ट्रीय भाषा बन सकती है जिसे अधिक संख्यक लोग जानते हों तथा बोलते हों और जो सीखने में सुगम हो। ऐसी भाषा हिन्दी ही है। यह बात हिन्दी साहित्य सम्मेलन सन् १९१० से बता रहा है और इसका कोई वजन देने लायक विरोध आजतक सुनने में नहीं आया है। अन्य प्रान्तों ने भी इस बात को स्वीकार कर ही लिया है। (राष्ट्र भाषा पृ० ४३)

"अगर हिन्दुस्तान को सचमुच एक राष्ट्र बनानाहै तो चाहे कोई माने या न माने राष्ट्र भाषा तो हिन्दी ही बन सकती है क्योंकि जो स्थान हिन्दी को प्राप्त है वह किसी दूसरी भाषा को कभी नहीं मिल सकता। इसलिये उचित और सम्भव तो यही है कि प्रत्येक प्रान्त में उस प्रान्त की भाषा, सारे देश के पारस्परिक व्यवहार के लिये हिन्दी और अन्तर्राष्ट्रीय उपयोग

के लिये अंग्रेजी का व्यवहार हो (राष्ट्र भाषा पृ० ४४)

५।७।४६ के 'हरिजन-बन्धु' में पूज्य महात्मा जी ने लिखा था कि अगर आपकी दृष्टि मर्यादा उत्तर में श्रीनगर से दक्षिण में कन्याकुमारी तक और पश्चिम में कराची से पूर्व में डिब्रूगढ़ तक पहुँचती हो और इतनी वह पहुंचनी भी चाहिये तो उसके लिये आपके पास हिन्दी को छोड़कर और कोई साधन नहीं। अंग्रेजी हमारी राष्ट्र भाषा नहीं बन सकती।

(हरिजन-बन्धु ५।७।४६)

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पूज्य महात्मा गान्धी जी हिन्दी को ही एक मात्र राष्ट्र भाषा माने जाने के लिये सबसे उपयुक्त समझते थे। दक्षिण भारत की भाषाओं का संस्कृत से क्या सम्बन्ध है, इस विषय में महात्मा गांधी जी ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के उपर्युक्त इन्दौर वाले अधिवेशन में कहा था कि "दक्षिण भारत कोई छोटा मुल्क नहीं है। वह तो एक महाद्वीप सा है। वहां चार प्रान्त और चार भाषाएं हैं—तामिल, तेलगू, मलयाली और कन्नड़ी। मैं इन भाषाओं को संस्कृत की पुत्रियां मानता हूँ। इनको संस्कृत की पुत्रियां कहने से मेरा अभिप्राय इतना ही है कि इन सब में संस्कृत शब्द काफ़ी हैं और जब संकट आ पड़ता है तब ये संस्कृत माता को पुकारती हैं और नये शब्दों के रूप में उसका दूध पीती हैं"।

(राष्ट्रभाषा पृ० ३८।३९)

इसी सम्बन्ध में १०।४।३७ के हरिजन-सेवक में महात्माजी ने स्पष्ट लिखा है कि "जहां तक दक्षिण भारत की भाषाओं का सम्बन्ध है, बहुत अधिक संस्कृत शब्दों से युक्त हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जो दक्षिण के लोगों को अपील कर सकती है।"

यह उपर्युक्त बात सर्वथा सत्य है।

जैसे कि मैं अपने दक्षिण भारत में २० वर्ष कार्य के अनुभव और कन्नड़ आदि भाषाओं के ज्ञान के आधार पर कह सकता हूँ। इन भाषाओं में ६० से ८० प्रतिशतक संस्कृत के शब्द पाये जाते हैं। जबकि उर्दू, फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग शून्य के बराबर है। आश्चर्य है कि श्री सत्यनारायण जी ने, जो दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार सभा के लगभग २५ वर्षों तक प्रधान-मन्त्री रहे हैं और जिनकी अपनी मातृभाषा तिलगू में लगभग ८० प्रतिशतक संस्कृत के शब्द हैं, हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा के नाम पर थोपने का परामर्श दिया है। केवल दक्षिण भारत की भाषाओं का ही नहीं, बंगाली, गुजराती, मराठी, पंजाबी, मारवाड़ी, उड़िया, आसामी आदि प्रान्तीय भाषाओं का भी संस्कृत के साथ बहुत अधिक सम्बन्ध है इस बात को ध्यान में रखते हुए महात्मा जी ने २६-६-४२ के हरिजन सेवक में लिखा था कि, "बहुतेरी प्रान्तीय भाषायें संस्कृत से सम्बन्ध रखती हैं और यह भी सच है कि भिन्न भिन्न प्रान्तों के मुसलमान अपने अपने प्रान्तों की भाषायें बोलते हैं। इसलिए यह ठीक ही है कि उनके लिए देवनागरी लिपि हिन्दी आसान रहेगी।" इससे बढ़कर हिन्दी के राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किये जाने के पक्ष में प्रबल युक्ति क्या हो सकती है? इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पूज्य महात्मा गान्धीजी हिन्दी को राष्ट्र-भाषा और देवनागरी को राष्ट्र लिपि के रूप में मानते थे और उनके प्रबल समर्थक थे जैसे कि ऊपर के उद्धरण सूचित करते हैं। यह महात्मा जी के नाम का दुरुपयोग है कि उसे हिन्दी और देवनागरी राष्ट्रभाषा तथा राष्ट्रलिपि के रूप में घोषित करने के विरोध में उद्धृत किया जाये। जीवन के अन्तिम भाग में यदि उन्होंने हिन्दुस्तानी शब्द का राष्ट्रभाषा के लिये

प्रयोग किया उसका उद्देश्य केवल राजनैतिक था अन्य कुछ नहीं। वर्धा के हिन्दुस्तानी सम्मेलन में २७।२।४५ को भाषण करते हुए महात्मा जी ने कहा कि—

"मैं हिन्दू मुसलिम एकता के लिए जीता हूं। मैं जानता हूँ कि हिन्दुस्तानी के प्रचार से हिन्दू मुसलिम एकता होगी।" १०।८।४७ के हरिजन सेवक में महात्मा जी ने लिखा कि "मैं यह कबूल करता हूं कि हिन्दुस्तानी पर मेरा जोर मुसलमान भाइयों की खातिर है।" महात्मा जी का राजनैतिक उद्देश्य से किया यह प्रयत्न सफल नहीं हुआ और हिन्दुस्तानी अस्तित्व में आ ही नहीं सकी और न आ सकेगी, यह बात स्पष्ट है। महात्मा जी का यह प्रयत्न वैसा ही असफल रहा जैसे कि अकबर का "दीन इलाही" चलाने का प्रयत्न। अतः अब भी उनके नाम की इस कल्पित मनघड़न्त दोगली हिन्दुस्तानी के राष्ट्रभाषा मानने के पक्ष में दुहाई देते जाना जबकि सादगी से रहना, थोड़े वेतन में सर्वसाधारण की तरह काम चलाना, अहिंसा का सब कार्यों में उपयोग आदि शिक्षाओं और आदर्शों की सर्वथा अवहेलना की जा रही है, सर्वथा अनुचित है। महात्मा जी के अपने शब्द इस विषय में उल्लेख करने योग्य हैं; "हम में कई ऐसे हैं जो हिन्दी और उर्दू को मिलाने की कोशिश करते हैं। कोई कहते हैं इसकी क्या आवश्यकता है? मैं तो सच्ची डेमोक्रेसी (जनतन्त्र या जमहूरियत) चाहता हूँ। सिर्फ हां में हां मिलाने से डेमोक्रेसी हिपोक्रेसी (कपट) बन जाती है। इसलिए मैंने कहा कि सिर्फ हां में हां न मिलाइये, अपनी सच्ची राय बताइये।" (२६।२।४५ के महात्मा जी के वर्धा में दिए गए भाषण से)

१६।६।४६ के "हरिजन सेवक" में महात्मा जी ने लिखा था

कि न हिन्दी हिन्दुस्तानी है न उर्दू हिन्दुस्तानी। हिन्दुस्तानी बीच की बोली है। यह सही है कि उसका चलन नहीं है। आज हरिजन सेवक को हिन्दुस्तानी खिचड़ी सी लगेगी, भद्दी लगेगी उसके लिये माफ करें। अगर ईश्वर मुझे जिन्दा रखेगा तो इसी अखबार को पढ़ने वाले देखेंगे कि हिन्दुस्तानी बोली वैसी ही मीठी होगी जैसे हिन्दी या उर्दू है।

पूज्य महात्मा जी की यह इच्छा पूरी न होने पाई और हिन्दुस्तानी वैसी ही भद्दी खिचड़ी के रूप में "हरिजन सेवक" "नया हिन्द" आदि कुछ थोड़े से पत्रों में दिखाई पड़ती है जैसे उनके समय में थी। महात्मा जी के अपने शब्दों में ऐसी 'भद्दी खिचड़ी को जिसका कहीं चलन नहीं है' राष्ट्रभाषा बनवाने का प्रयत्न कितना असंगत और उपहास जनक है। इस पर भारतीय संविधान सभा के मान्य सदस्य स्वयं विचार करें और महात्मा जी के ही पूर्वोद्धृत लेखानुसार शुद्ध सरल, सर्वमान्य वैज्ञानिक देवनागरी लिपि और संस्कृतनिष्ठ हिन्दी को अविलम्ब राष्ट्रलिपि और भाषा के रूप में घोषित करवायें। इसी से वे जनता के सन्मान के पात्र तथा यश के भागी बनेंगे अन्यथा नहीं।

देवनागरी लिपि की सर्वोत्तमता तथा विशेषता:—

देवनागरी लिपि कितनी सरल तथा वैज्ञानिक है यह ऊपर उद्धृत महात्मा गांधी जी के वाक्यों से भी स्पष्ट है। मराठी इसी लिपि में, जिसे महाराष्ट्र में बालबोध के नाम से भी कहा जाता है, लिखी जाती है। गुजराती लिपि की वर्णमाला सर्वथा देवनागरी के समान है अक्षरों की रचना में बहुत थोड़ा अन्तर है जिसे सुगमता से सीखा जा सकता है। बंगाली की वर्णमाला भी देवनागरी के सर्वथा समान है। कुछ अक्षरों की रचना में

थोड़ा सा भेद है। मैं अपने अनुभव से कह सकता हूं कि हिन्दी जानने वाला व्यक्ति आधे घण्टे में बंगाली वर्णमाला को भली भांति सीख सकता है। गुरुमुखी भी देवनागरी से मिलती जुलती हैं जिससे आधे घण्टे में उसे सीखा जा सकता है। दक्षिण की कन्नड़ी, तिलगु, मलयालम की लिपियों में वर्णमाला सर्वथा देवनागरी लिपि के ही समान है यद्यपि अक्षरों की रचना में पर्याप्त अन्तर हो गया है। यह प्रसन्नता की बात है कि गत वर्षों में कन्नड़ी आदि भाषाओं के अनेक ग्रन्थ देवनागरी लिपि में प्रकाशित किये गये हैं। मैंने पहले पहल कर्णाटक (कन्नड़ी) का अभ्यास एक इसी प्रकार के 'माध्व विजय' नामक ग्रन्थ की सहायता से किया था। यदि महात्मा गांधी जी आदि महानुभावों के संकेतानुसार भिन्न भिन्न प्रान्तवासी सरल, वैज्ञानिक और पूर्ण देवनागरी लिपि को अपना लें तो अन्य प्रान्तवासी भी उनके साहित्य से विशेष लाभ उठा सकेंगे। देवनागरी लिपि की इस सर्वोत्तमता और अन्य प्रान्तीय लिपियों के साथ उसके निकट सम्बन्ध को ध्यान में रखते हुए यह सर्वथा उचित ही है कि उसे अविलम्ब भारत की राष्ट्रलिपि घोषित कर दिया जाय।

देवनागरी लिपि और निष्पक्ष मुसलमान

देवनागरी लिपि की श्रेष्ठता को निष्पक्षपात मुसलमान विद्वानों ने भी स्वीकार किया है उदाहरणार्थ मिर्ज़ा इरफान-अलीबेग साहब का कथन है कि "जो खख़्त नागरी खत अच्छी तरह से लिख-पढ़ सकेगा वह इस बात को भी समझ सकेगा कि नागरी खत के सिवाय किसी और खत में सही तलफ्फुज़ नहीं लिखा जा सकता।" (नागरी खत, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ पृ० २२)

जब कमाल अता तुर्क अरबी रस्म अलखत से निजात हासिल करने के बाद भी मुसलमान बाकी रहे तो हम हिन्दुस्तानी भी देवनागरी रस्म अलखत अख्त्यार करके क्यों मुसलमान बाकी न रहेंगे ? रस्म अलखत बदलने से न मज़हब बदल जाता है और न तमद्दुन मसख़ हो जाता है। अगर हिन्दू और मुसलमानों को आपस में एक दिल होना है तो उनको एक ही ज़बान और रस्म अलखत रखना होगा। यही वहदतख्याल (एकता का विचार) पैदा करने और आपस में मुहब्बत व इखलास कायम करने का बेहतरीन ज़रिया है। इतना ही नहीं, मुसलमान विद्वान् फ़ारसी अरबी लिपि के दोषों को अनुभव करते हुए उनके संशोधन का प्रयत्न कर रहे हैं। ईरान की राजधानी तिहरान में सन् १३२५ हिजरी अर्थात् १९०७ ई० में एक पुस्तक 'कुल्लियात मलकम' के नाम से छपी जिसके लेखक प्रिन्स मिर्ज़ा मलकम खां नाज़िमुद्दौला हैं। उन्होंने इस पुस्तक में फ़ारसी लिपि के २४ दोष दिखाये जो उर्दू लिपि पर भी लागू होते हैं।

ऐसी त्रुटिपूर्ण (फ़ारसी) लिपि को देवनागरी जैसी शुद्ध, सरल और वैज्ञानिक लिपि के साथ २ सब सीखें और सरकारी कार्यों में भी उसे काम में लाया जाए यह हिन्दुस्तानी के समर्थकों का प्रस्ताव सर्वथा अनुचित और अव्यवहार्य है।

देवनागरी और रोमन लिपि

यह आश्चर्य की बात है कि हमारे देश में अभी तक कई ऐसे व्यक्ति विद्यमान हैं जिन्हें रोमन लिपि का मोह है। वे कहते हैं कि भारतीय भाषाओं के लिये रोमन लिपि को काम में लाया जाए तो सारा झगड़ा मिट जाएगा। किन्तु ऐसा प्रस्ताव एक अराष्ट्रीय दास मनोवृत्ति का सूचक है। क्या हमारे देश

में कोई उत्तम लिपि नहीं रही जो हमें एक विदेशी, दोषपूर्ण लिपि के प्रयोग करने की आवश्यकता पड़े। देवनागरी लिपि की रोमन लिपि के साथ तुलना करते हुए सुप्रसिद्ध प्राच्यविद्या विशारद श्री मैक्डानल ने "A History of Sanskrit Literature' पृ० १७ में लिखा:—

"It (Deva Nagari Script) not only represents all the sounds of the Sanskrit Language, but is arranged on a thoroughly scientific Method, the simple vowels coming first, then the dipthongs and lastly the consonants in uniform groups according to the organs of speech with which they are pronounced. We Europeans, on the other hand, 2500 years later and in a scientific age, still employ an alphabet which is not only inadequate to represent all the sounds of our languages, but even preserves the random order in which vowels and consonants are jumbled up as they were in the Greek adoption of the primitive semitic arrangements of 3000 years ago."

(A History of Sanskrit Literature P. IJ.)

यहां श्री मैक्डोनल ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि देवनागरी लिपि पूर्ण तथा वैज्ञानिक है जब कि हम यूरोपियन आज २५०० वर्ष व्यतीत होने पर भी जिस लिपि का प्रयोग करते हैं वह अपूर्ण तथा अवैज्ञानिक है। आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी

में संस्कृत के भू० पू० प्रोफेसर थौमस आदि विद्वानों ने भी इसी प्रकार के प्रशंसात्मक शब्द देवनागरी लिपि की सर्वोत्तमता के विषय में A Legacy of India' आदि पुस्तकों में लिखे हैं जिन्हें विस्तारमय से उद्धृत नहीं किया गया।

उस्मानिया युनिवर्सिटी हैदराबाद के प्रो० हारूनखां साहब ने लिखा है कि "हम हिन्दी का मुकाबला करने को हर समय तैय्यार रहते हैं किन्तु हिन्दी भाषा में जो विशेषता पाई जाती है वह विशेषता अन्य किसी भाषा में नहीं है। हिन्दी भाषा जैसी लिखी जाती है, वैसी ही पढ़ी जाती है। उर्दू में यह गुण नहीं, लिखने वाला ही लिखावट को पढ़ और समझ सकता है।"

शम्सुलउलमा जनाब सैय्यदअली बलग्रामी बी.ए.,एल.,एल., बी. एस. ने इस विषय पर विस्तृत विचार प्रकट करते हुए स्पष्ट स्वीकार किया कि अरबी फारसी लिपि बड़ी दोषयुक्त और कठिन है। हिन्दी और देवनागरी उसकी अपेक्षा बहुत आसान है। उनके लेख में से निम्न उद्धरण देना पर्याप्त है :—

"इससे मालूम होगा कि बलिहाज़े खत के आर्येवी ज़बानों में इबारत का पढ़ना बमुक़ाबल सिमयातिकी (Semitic) ज़बानों के किस दरजा आसान है यानी आर्येवी ज़बान में हर एक लफ्ज एक ही तरह से पढ़ा जा सकता है और उसके तलफ़्ज़ (उच्चारण) में दूसरी कोई शक नहीं होती। बख़िलाफ़ इसके महज खत के लिहाज से सिमयातिकी लफ़्ज़ को तीन-चार बल्कि इससे भी ज्यादह तरीकों से पढ़ सकते हैं। बख़िलाफ़ इसके अगर इन्हीं अलफ़ाज़ को संस्कृत हरूफ़ में लिखा जाए तो शक व सुबह की गुंजायश न रहेगी। ... इसी वजह

से बिला सर्फ़न (व्याकरण) व लुगत (कोष) से वाक़िफ हुए अरबी की इबारत का सही पढ़ना महालात से है बख़िलाफ़ इसके एक बच्चा भी सिर्फ़ हरूफ़शनासी (अक्षरज्ञान) के बाद संस्कृत की इबारत को बिला तकल्लुफ और बगैर मानी समझे हुए पढ़ सकता है।"

इसके बाद आप लिखते हैं कि—

"बखूबी समझ में आ सकता है कि इस नाजिस खत ने उर्दू की पढ़ाई को किस दर्जा मुश्किल कर दिया है और कुछ ताज्जुब की बात नहीं कि हमारे मकतबों के बच्चों को महज दुरुस्त इबारतख्वाही के लिये दो साल दरकार होते हैं। इस इस्तकाल का बहुत बुरा असर हम मुसलमानों की तालीमी तरक्की (शिक्षा विषयक उन्नति) पर पड़ा है और पड़ रहा है।" (सैय्यद अली बलग्रामी कृत तमद्दुने-अरब पृ० २३-२७)

सैयद इब्नहुसन शारक बी. ए., बी. टी. ने 'अज़्ज़माना नामक अख़बार के जुलाई १९३७ के अंक में एक लेख लिखते हुए मुसलमानों को सलाह दी कि—

'इसलिए बराह मेहरबानी मिस्र व ईरान पर फ़िदा न हूजिये और अरबी फारसी के अलफ़ाज़ अपनी अपनी साफ़ सुथरी ज़बान में न थोपिये............

परिशिष्ट

क्या अंग्रेज़ी को राजभाषा बनाना उचित है

मैंने सन् १९४६ में 'हमारी राष्ट्रभाषा' नामक पुस्तक जब केन्द्रीय हिन्दी रक्षा समिति की ओर से उसके प्रधान के रूप में छपवाई थी और उसका परिवर्धित संस्करण 'हमारी राष्ट्रभाषा और लिपि' इस नाम से सार्वदेशिक सभा की ओर से सन् १९५० में छपवाया था, उस समय इस बात पर गम्भीरता से विचार करने की भी आवश्यकता नहीं समझी गई थी कि अंग्रेज़ी जैसी एक विदेशी भाषा को भी भारत में राजभाषा के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। 'हमारी राष्ट्रभाषा और लिपि' (द्वितीय परिवर्धित संस्करण) के पृ० ७ पर मैंने लिखा था कि 'इस बात को तो कोई देशभक्त एक क्षण के लिये भी मानने को उद्यत न होगा कि अंग्रेजी जैसी किसी विदेशी भाषा को हम भारतीय राष्ट्रभाषा के रूप में मान लें और उसमें अपना समस्त कार्यकलाप करें। ऐसा मानना राष्ट्रीयता की भावनापर कुठाराघात करना और दासमनोवृत्ति की पराकाष्ठा का सूचक होगा। इस के अतिरिक्त यह जानते हुए कि भारत में लगभग २०० वर्षों तक अंग्रेज़ों का राज्य होते हुए भी १० प्रतिशतक शिक्षितों में अंग्रेज़ी जानने वालों की संख्या केवल २ प्रतिशतक रही है, इस प्रकार का प्रस्ताव ही सर्वथा मूर्खता पूर्ण होगा।"—('हमारी राष्ट्रभाषा और लिपि' पृष्ठ ७)

किन्तु यह आश्चर्य और खेद की बात है कि स्वतन्त्र भारत

में अंग्रेज़ी जैसी विदेशी भाषा को निरवधिक काल के लिये ही नहीं, सदा के लिये भी राजभाषा के रूप में रखने के पक्ष-पाती अनेक नेता विद्यमान हैं जिन में भारत के प्रथम गवर्नर जनरल और स्वतन्त्र दल के संस्थापक प्रधान श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य का नाम सबसे प्रमुख है। श्री चक्रवर्ती राज-गोपालाचार्य ने अपने 'स्वराज्य' नामक अंग्रेज़ी पत्र तथा अन्य पत्रों में प्रकाशित अनेक वक्तव्यों और हिन्दी विरोधी सम्मेलनों में भाषणों के द्वारा यह विचार प्रबल रूप से रखने का (हमारे विचार में सर्वथा निन्दनीय) प्रयत्न किया है कि भारतीय संविधान के १७ वें खण्ड को जिस में २६ जनवरी सन् १९६५ से हिन्दी को भारत की राजभाषा के रूप में प्रचलित करने का विधान था—समाप्त कर दिया जाए और सदा के लिये अंग्रेजी को भारत की राजभाषा रखा जाए। अभी मार्च सन् १९६५ में श्री राजगोपालाचार्य ने "English for Unity" (एकता के लिये अंग्रेज़ी) नामक ३२ पृष्ठों की पुस्तिका छपवा कर मेरे पास भी १ प्रति मेरे फरवरी १९६५ के अन्तिम सप्ताह में प्रकाशित "An open letter to Shri Raj Gopala-charya" (श्री राजगोपालाचार्य के नाम खुला पत्र) इसके उत्तर में भिजवाई है जिसमें वे लिखते हैं:—

"There is no reason why we should ever give up English. There is no dishonour in India carrying on with the English language as hitherto."

"The movement to replace English by Hindi is to lay the axe at the root of our unity and our progress. Our status in the world

would gradually go down. Sensible people are veering round, seeing clearly that any disturbance of the present position of English means disintegration of the Country. But the false patriotism that is behind the move to make India lose one of its most valuable assets is still active.''

(English for Unity by Rajaji P. 2-3.)

अर्थात् कोई कारण नहीं कि हम क्यों अंग्रेज़ी का कभी भी परित्याग कर दें। अब तक जैसे हम करते आये हैं वैसे ही आगे भी अंग्रेज़ी में सारा काम काज चलाने में हमारे लिये कोई अपमान की बात नहीं। अंग्रेज़ी का स्थान हिन्दी ले ले यह आन्दोलन हमारी एकता और हमारी प्रगति पर कुठाराघात है। संसार में हमारी प्रतिष्ठा शनैः शनैः कम होती जाएगी। बुद्धिमान् मनुष्य स्पष्ट देख रहे हैं कि अंग्रेज़ी की वर्तमान स्थिति में किसी प्रकार के परिवर्तन का अर्थ है देश का खण्ड-खण्ड होना। किन्तु झूठी देशभक्ति, जो भारत को एक बहुमूल्य सम्पत्ति से वञ्चित करने के आन्दोलन के पीछे है, अब भी सक्रिय है।

दुर्भाग्यवश श्री राजगोपालाचार्य आज जिस अराष्ट्रीय विचारधारा का प्रचार कर रहे हैं इसका निराकरण उनके अपने ही एक सच्चे राष्ट्रीय नेता के रूप में सन् १९२८ में लिखे 'English-Hindi Self-instruction." नामक दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास द्वारा प्रकाशित पुस्तक की भूमिका रूप लेख से हो जाता है अतः यहां उसके कुछ मुख्य अंशों को उद्धृत करना मैं उचित समझता हूँ।

इस भूमिका का प्रारम्भ श्री राजा जी ने इस आशय के शब्दों से किया था (विस्तारभय से मैं केवल उनका अनुवाद यहां दे रहा हूँ) 'भारत के ३० करोड़ निवासियों में से १४ करोड़ हिन्दी अथवा इस के साथ मेल रखने वाली भाषा बोलते हैं। बंगाली, आसामी और उड़िया को इकट्ठा रक्खा जा सकता है और उनको बोलने वालों की संख्या ६ करोड़ के लगभग है। मराठी और गुजराती बोलने वालों की संख्या ५ करोड़ है। द्राविड़ समुदाय की भाषाएं जिनमें तामिल, कन्नड़, मलयालम, तेलुगु और तुलु सम्मिलित हैं, कुल मिलकर ६ करोड़ मनुष्यों के द्वारा बोली जाती हैं। इस प्रकार हिन्दी भाषियों की बहुत अधिक संख्या का निर्देश करके राजा जी ने उस भूमिका में यह महत्त्व पूर्ण प्रश्न उठाया—

'Can the deliberations of the Central Assembly and the transactions of the high officers of state and others exercising authority in the Central Government be permitted to be done in English?

अर्थात क्या केन्द्रीय विधान सभा के विचार विमर्श, राज्य के ऊंचे अधिकारियों और केन्द्रीय सरकार के अधिकारियों के कार्य व्यवहार अंग्रेज़ी में किये जाने की अनुमति दी जा सकती है ? इस का उत्तर उन्होंने इन स्पष्ट शब्दों में दिया जो उनकी सच्ची राष्ट्रीयता और देशभक्ति का सूचक था।

"Obviously not, if we desire democracy to be true in fact as well as in form, if we do not want educated men to be appointed to places of power and influence and conduct their

affairs apart from the people and the electorate. To make popular control real, the state language must be spoken and understood by large masses of people. Hindi is bound to be the language of the Central Government and the legislature and also of the provincial Governments in their dealings with each other and with the Government of India."

अर्थात् स्पष्टतया नहीं। यदि हम यह चाहते हैं कि प्रजातन्त्र अपने स्वरूप और भावना में सच्चा हो और यदि हम यह नहीं चाहते कि शिक्षित लोगोंको अधिकार और प्रभाव के स्थान पर जनता और निर्वाचक वर्ग से सर्वदा अलग रखा जाए, जनता के अधिकारों को वास्तविक बनाने के लिये यह आवश्यक है कि राष्ट्र की भाषा वह होनी चाहिये जिसको उसके निवासियों की बड़ी संख्या बोल और समझ सकती है। हिन्दी का केन्द्रीय सरकार, विधान सभा, प्रान्तीय सरकारों के आपस के व्यवहार और केन्द्रीय सरकार से व्यवहार की भाषा बनना अनिवार्य अथवा सुनिश्चित है।

आज राजा जी हिन्दी के थोपे जाने की बात कहते हैं। किन्तु उस अंग्रेजी को जनता पर थोपते हुए उन्हें कोई संकोच नहीं होता जो विदेशी भाषा के होने के अतिरिक्त कठिनता से २ प्रतिशतक भारतीयों द्वारा समझी जाती है। परन्तु उस भूमिका में राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर उन्होंने कितनी अच्छी बात लिखी थी कि—

"It is not possible or desirable to impose English for our sake on all and weaken the

people's control over their representatives all over India. The Nehru Report constitution has, it may be noted, adopted Hindi as the State Language of India, This is the logical consquence of self Government of India."

अर्थात् हम अपने स्वार्थ वश सब पर अंग्रेजी को थोपें और सारे प्रतिनिधियों पर जनता के नियन्त्रण को निर्बल करें यह बात न सम्भव है और न वाञ्छनीय।

इस युक्ति-युक्त विचार का समर्थन करते हुए श्री राजा जी ने आगे जो बात लिखी वह भी वस्तुतः स्वर्णाक्षरों में उल्लेखनीय है। उन्होंने लिखा कि नेहरू रिपोर्ट संविधान में यह बात याद रखने योग्य है कि हिन्दी को भारत की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया और अपनाया गया है। यह बात भारत के स्वराज्य का युक्ति-युक्त परिणाम है। यह कितने आश्चर्य और दुःख की बात है कि वही राजाजी जो हिन्दी को भारत की एक मात्र राजभाषा बनाने के इतने कट्टर समर्थक थे भारतीय संविधान में हिन्दी के राजभाषा बनाने की घोषणा के १५ वर्ष बाद उसका इतना घोर विरोध करते हुए अंग्रेजी को एक मात्र राजभाषा बनाने का समर्थन कर रहे हैं। क्या ऐसे व्यक्ति का नेतृत्व विश्वसनीय हो सकता है वह चाहे कितना ही बुद्धिमान् माना जाता हो ?

प्रश्न यह है कि यदि उस समय (सन् १९२७-२८) में राजा जी के विचार में भारत के स्वराज्य की यह युक्ति-युक्त परिणाम था कि हिन्दी भारत की राजभाषा के रूप में स्वीकार की और अपनाई जाए जैसे कि उन दिनों मोतीलाल नेहरू रिपोर्ट के

संविधान में कहा गया था तो भारत के १९५० के संविधान में स्वीकृत उसी हिन्दी की राजभाषा विषयक धारा पर उन्हें क्यों आपत्ति होनी चाहिये जिसके विरुद्ध वे आज आकाश-पाताल को एक कर रहे हैं। क्या अब हिन्दी भारत के स्वराज्य के लिये आवश्यक भाषा नहीं रही जो वे अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषा को राजभाषा के रूप में सदा के लिये जारी रखने की बात बार-बार कहते और लिखते हैं ?

उस लेख के अन्त में राजा जी ने लिखा था कि—

'दक्षिण भारत-वृक्ष की एक मृत शाखा के समान होगा यदि वह भारत के बड़े भाग के साथ जीवित सम्पर्क में न होगा और यहां भी हम अंग्रेजी माध्यम पर निर्भर नहीं रह सकते क्योंकि भारत ज्यों ज्यों अपने स्वराज्य के उद्देश्य की ओर बढ़ता जाएगा, अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय पृष्ठभूमि में पीछे पीछे हटती जाएगी।" राजा जी की मूल अंग्रेजी भूमिका के शब्द ये थे—

"The South will be a dead branch of the tree, if it is not in living daily contact with the larger India and here too we can not rest on the English Medium which is bound to recede into the back ground as India advances towards its goal."

भूमिका के अन्तिम भाग में राजाजी ने उपसंहार इन शब्दों में किया था—

"If Hindi becomes the language of all India and public services and the mother tongue that

of the provinces in all political and cultural work, the time now spent on English will be saved in such a great measure that the mother tongue will receive a fresh impetus and opportunity for growth and fuller development."

अर्थात् यदि हिन्दी सारे भारत की और पब्लिक सर्विसेज़ की भाषा बन जाती और मातृभाषाएं सारे राजनैतिक और सांस्कृतिक कार्य के लिये प्रान्तों में उपयोग में लाई जाती हैं, तो अब अंग्रेजी में जो समय खर्च किया जा रहा है, उसमें इतनी बड़ी बचत हो जाएगी कि मातृभाषाएं पूर्ण विकास के लिए नई गति-शक्ति पाएंगी।

अब मैं इस बात का निर्णय विचारशील पाठकों पर छोड़ता हूं कि राजाजी के तब और अब के विचारों में कितना आकाश-पाताल का अन्तर हो गया है और इन में से कौन से विचार सच्ची राष्ट्रीयता और देशभक्ति तथा एकता आदि की दृष्टि से उपादेय हैं। साथ ही यह बात भी विचारणीय है कि जो नेता बिना किसी प्रकार के परिस्थिति में परिवर्तन के अपने विचारों में ऐसा आमूल-चूल परिवर्तन कर सकता है, उस का नेतृत्व कहां तक विश्वसनीय हो सकता है।

मैंने अपने "An open letter to Shri Rajgopalacharya" (श्री राजगोपालाचार्य जी के नाम खुला पत्र) इस शीर्षक से प्रकाशित पत्र में जो फरवरी १९६५ के अन्तिम सप्ताह में प्रकाशित करा कर लोकसभा और राज्यसभा के सदस्यों तथा देश के भिन्न २ भागों के प्रमुख व्यक्तियों के पास भेजा गया और जिसकी प्रति श्री राजा जी के पास भी भेजी गई

उनका ध्यान इन बातों की ओर आकर्षित किया था और लिखा था कि मान्य राजा जी, यदि गम्भीरता और निष्पक्षपातता से विचार करेंगे तो मुझे निश्चय है कि उनको अपनी सन् १९२८ में लिखी भूमिका में प्रकाशित विचार अधिक युक्तियुक्त और सच्ची राष्ट्रीयता के सूचक प्रतीत होंगे।

राजा जी ने मेरे पत्र के उत्तर में अपनी मार्च १९६५ में प्रकाशित 'English for Unity' नामक छोटी सी पुस्तिका भिजवाई है जिसमें उन्होंने 'An Explanatian' के शीर्षक से अन्त में लिखा है—

"Many friends as well as opponents in this controversy, assume that one has no right to evolve or change. I don't belieue I have greatly changed my views on this question. I feel there is a running thread of consistence right through, not withstanding the changes on the surface. But I do not press that point. My consistency is not the issue involved in this matter."

अर्थात्—इस विवाद में बहुत से मित्र और विरोधी यह कल्पना कर लेते हैं कि एक व्यक्ति को बदलने अथवा विकसित होने का अधिकार नहीं। मैं नही विश्वास करता कि इस विषय में मेरे विचारों में बहुत परिवर्तन हुआ है। मैं अनुभव करता हूं कि उस में एक सम्बद्धता का सूत्र आदि से अन्त तक रहा है किन्तु मैं इस बिन्दु पर बल नहीं देता। मेरी सम्बद्धता इस विषय के अन्तर्गत नहीं है।

मैंने उन की इस पुस्तिका की सब मुख्य बातों का उत्तर

१६ पृष्ठों में टाइप करा कर उनके पास भेज दिया है और उस की प्रतियां छपवाई जा रही हैं। यहां तो संक्षेप में इतना ही निवेदन करना पर्याप्त है कि उनके उस समय के और अब के विचारों में सब निष्पक्ष विचारक आकाश-पाताल का अन्तर पाते हैं और इस प्रकार आमूल चूल परिवर्तन विना किसी प्रबल आधार वा परिवर्तित अतर्कित परिस्थिति के करने वाले व्यक्ति के नेतृत्व पर विश्वास नहीं किया जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति को विकसित होने का अधिकार ही नहीं, यह उसका कर्त्तव्य है किन्तु दुःख की बात यह है कि मान्य राजा जी के विचारों में यह विकास वा Evolution नहीं अपितु राष्ट्रीयता या देशभक्ति इत्यादि की दृष्टि से यह ह्रास (Devolution) ही हुआ है जो वे अंग्रेज़ी को (जिसके जानने वालों की संख्या भारत में २ प्रतिशतक से अधिक नहीं) सदा के लिये भारत की राजभाषा बनाना चाहते हैं और कहते हैं कि उसी से एकता स्थापित हो सकती है। कितने आश्चर्य की बात है कि वे अपनी पुस्तिका में कई स्थानों पर अंग्रेज़ी के विदेशी भाषा होने की सचाई से भी इन्कार करते हुए कहते हैं कि—

"English is no more foreign than our legal or parliamentary or administrative procedure." (English for Unity. P. 11)

अर्थात्—अंग्रेज़ी वैधानिक, संसदीय अथवा प्रशासनिक प्रक्रिया से अधिक विदेशी नहीं है।

पर अन्त में अंग्रेज़ी को विदेशी शासकों की भाषा मानते हुए वे कहते हैं—

"Fnglish is no doubt the language of the foreigner who ruled India till recently. But

must we harbour a feeling of hatred in respect of his language?" (P. 21)

अर्थात् इसमें सन्देह नहीं कि अंग्रेजी उन विदेशियों की भाषा है जिनका कुछ वर्ष पूर्व तक हमारे देश में शासन था पर क्या इसलिये हमें उनको भाषा के प्रति घृणा का भाव रखना चाहिये ? हमारा उत्तर स्पष्ट है कि हमें किसी भाषा के प्रति घृणा का भाव न रखना चाहिये और जिनके पास समय और शक्ति हो उनके लिये किसी भी भाषा के पढ़ने में कोई हानि नहीं किन्तु एक विदेशी भाषा को शिक्षा का माध्यम और राजभाषा बनाना अत्यन्त अनुचित, हानिकारक और राष्ट्रीय आत्म-सम्मान के सर्वथा विरुद्ध है इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं।

राजा जी कहते हैं कि

"The idea that honour demands some one of our Indian languages, to be enthroned in official sovereignty will, if indulged in, be an error of the first magnitude."

(P. 17).

अर्थात् यह विचार कि हमारे आत्म सम्मान की यह मांग है कि हमारी भारतीय भाषाओं में से किसी को राजभाषा पद पर प्रतिष्ठित किया जाए, यदि कार्य रूप में परिणत किया जाए तो यह पहले दर्जे की भूल होगी।

इस विचार के विषय में सिवाय इसके क्या कहा जाए कि यह राजा जी जैसे नेताओं की अराष्ट्रीयता की पराकाष्ठा का सूचक विचार है जिससे कोई सच्चा देशभक्त कभी सहमत नहीं हो सकता। अंग्रेजी ने जो मानसिक दासता हमारे कई

शिक्षितों के अन्दर उत्पन्न कर दी उसका ही यह एक उदाहरण है और कुछ नहीं। दक्षिण भारत के ही एक उच्चकोटि के सुप्रसिद्ध नेता श्री अनन्तशयनम् आयंगार ने (जो आजकल बिहार के राज्यपाल हैं) प्रयाग में ६ मार्च को भाषण देते हुए ठीक ही कहा कि किसी भी देश में एक विदेशी भाषा का राजभाषा के रूपमें प्रयोग नहीं किया जाता। इसलिये पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये कि हिन्दी अंग्रेजी का स्थान राजभाषा के रूप में ले ले क्योंकि हमारा राष्ट्रीय प्रभाव और आत्मसम्मान इस पर निर्भर है।

राजा जी ने यहां तक लिखने का दुस्साहस किया है कि:—

'The request of the non—Hindi people is just and is supported further by the fact that English has worked and has been tolerated for over a century with no ill-effects."

अर्थात् अहिन्दी भाषियों की प्रार्थना न्याय संगत है और इस तथ्य से उसका समर्थन होता है कि अंग्रेजी ने अच्छा कार्य (राज भाषा) के रूप में किया है और एक शताब्दी से अधिक समय से उसको बिना किसी बुरे परिणाम के सहन किया गया है।

इस विषय में हम स्पष्ट करना चाहते हैं कि यदि अंग्रेजी को एक शताब्दी से अधिक समय तक राजभाषा के रूप में सहन किया गया तो केवल इसलिये कि अंग्रेजों के शासन में भारतीयों को अपनी भाषा को राजभाषा बनाने की स्वतन्त्रता ही न थी पर तब भी उनके अन्दर यह आतुरता पाई जाती थी कि हिन्दी स्वतन्त्र भारत की भाषा बनाई जाएगी जैसे कि नेहरू कमेटी के संविधान ने सन् १६२८ में स्वीकृत किया था

जिसका श्री राजगोपालाचार्य ने प्रबलतम समर्थन करते हुए यहां तक लिखा था कि यह भारत के स्वराज्य का युक्तियुक्त परिणाम है।

अंग्रेजी के राजभाषा रहने का जो बुरा परिणाम हुआ उसका वर्णन हम अपने शब्दों में न रख कर भारत के प्रधान-मन्त्री स्व० पण्डित जवाहरलाल जी नेहरू के शब्दों में रखना चाहते हैं जिनके विषय में श्री राजगोपालाचार्य जी भी कभी यह कहने का साहस नहीं कर सकते कि वे अंग्रेजी के विरोधी वा द्वेषी थे। १३ सितम्बर १९४९ में भारतीय संविधान सभा में राजभाषा के प्रश्न पर भाषण करते हुए पं० जवाहरलालजी ने स्पष्ट कहा था कि

"No Nation can become great on the basis of a foreign language. Why ? because a foreign language can not be the language of the people. It (English) created a gulf between us who know English and those who did not know English and that was fatal for the progress of the Nation. This is the thing which certainly we can not possibly tolerate to-day. We can not tolerate that there should be an English elite and a larger mass of people not knowing English. Therefore we must have our own language."

अर्थात् कोई भी राष्ट्र एक विदेशी भाषा के आधार पर महान् नहीं बन सकता क्यों ? क्योंकि एक विदेशी भाषा जनता की भाषा नहीं बन सकती। अंग्रेजी ने अंग्रेजी जानने वालों

और न जानने वालों के बीच में एक खाड़ी पैदा कर दी और यह राष्ट्र की उन्नति के लिये घातक थी। यह चीज है जिसको आज हम सहन नहीं कर सकते। हम इस बात को सहन नहीं कर सकते कि एक ओर अंग्रेजी जानने वालों का तथाकथित 'श्रेष्ठ जन समुदाय' हो और दूसरी ओर अंग्रेजी न जानने वालों का बहुत बड़ा जन समूह। इसलिये हमारी अपनी राज-भाषा होनी आवश्यक है।

अंग्रेजी के शिक्षा का माध्यम और राजभाषा होने का इससे बुरा परिणाम और क्या हो सकता है कि अंग्रेजों के इस देश से चले जाने के १८ वर्ष बाद भी श्री राजगोपालाचार्य और जनरल करियप्पा जैसे सुशिक्षित भारतीय नेता विद्यमान हैं जो अंग्रेजी को ही सदा के लिये भारत की राजभाषा बनाये रखने के पक्षपाती हैं। क्या यह दास-मनोवृत्ति किसी देशभक्त को शोभा देती है? राजा जी का कथन है कि अंग्रेजी और केवल अंग्रेजी के द्वारा भारत की एकता की रक्षा हो सकती है जैसे कि उन्होंने अपनी मार्च १९६५ में प्रकाशित "Engllish for unity" नामक पुस्तिका में सिद्ध करने का प्रयत्न किया है किन्तु हम उनसे पूछना चाहते हैं कि अंग्रेजी अधिक से अधिक अंग्रेजी जानने वालों में ही एकता स्थापित कर सकेगी जिनकी संख्या भारत में २ प्रतिशतक से अधिक नहीं, इससे अन्य ९८ प्रतिशतक में एकता कैसे स्थापित हो सकती है? एक विदेशी भाषा के द्वारा ही देश में एकता स्थापित होसकती है अन्यथा नहीं, वह विचार ही स्वयं राष्ट्रीयता और देशभक्ति की भावना के सर्वथा विपरीत है।

अन्य स्वतन्त्र देशों का उदाहरण—

अन्य देशों के कितने ही ताजे उदाहरण हमारे सम्मुख हैं

कि स्वतन्त्रता प्राप्त करते ही उन्होंने पहला काम अपनी भाषा को राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने का किया। आयर्लैण्ड को कुछ वर्ष पूर्व जब स्वतन्त्रता मिली तो उसने अपनी आयरिश भाषा को राजभाषा और शिक्षा का माध्यम बनाया। यहूदियों ने जब विशेष आन्दोलन करके अपना स्वतन्त्र इजराईल राज्य बना लिया तो पहला काम यह किया कि हिब्रू भाषा जो मृतप्राय हो चुकी थी अपने राष्ट्र की राजभाषा और शिक्षा का माध्यम बनाया। ऐसे ही अन्य कितने ही उदाहरण हैं पर हमारे इस प्रिय भारत की अवस्था कितनी शोचनीय है कि सन् १९५० में भारतीय संविधान सभा में सर्वसम्मति से हिन्दी को भारत की राष्ट्र भाषा स्वीकार करने की घोषणा करते हुए भी १५ वर्ष का समय उसकी तय्यारी के लिये देना उचित समझा गया (यद्यपि स्व० श्रद्धेय राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास जी टण्डन, डा० रघुवीर जी जैसे अनेक दूरदर्शी सच्चे राष्ट्रीयता वादी देशभक्त नेताओं ने इतनी लम्बी अवधि देने का विरोध किया था) और जब वह अवधि पूरी हो चुकी और हिन्दी के प्रमुख राजभाषा होने की घोषणा २६ जनवरी १९६५ को कर दी गई तो श्री राजगोपालाचार्य जी, श्री लक्ष्मण स्वामी मोद-लियार जैसे कुछ दक्षिण भारतीय नेता ही नहीं, अन्य भी अनेक लोग उनकी हां में हां मिलाते हुए अंग्रेजी को निरवधिक काल के लिये राजभाषा के रूप में रखने का आन्दोलन कर रहे हैं और यह देख कर अत्यन्त दुःख होता है कि हमारी सरकार भी उनके आगे घुटने टेकती जा रही है। इसीलिये खिन्न होकर मैंने मान्य प्रधानमन्त्री श्री लालबहादुर जी शास्त्री को २-३-१९६५ को नई देहली से यह पत्र लिखा था कि—

श्रीयुत मान्यवर प्रधानमन्त्री जी, सादर नमस्ते !

आज आपकी सेवा में श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य जी के नाम भेजे खुले पत्र की प्रति अवलोकन और उचित उपयोगार्थ भिजवा रहा हूं। आप देखेंगे कि आज दुर्भाग्यवश जो श्री राज गोपालाचार्य जी हिन्दी के राजभाषा बनाने के कट्टर विरोधी बनकर अंग्रेजी के प्रबल पक्षपाती बने हुए हैं, उन्होंने स्वयं राष्ट्रीय सच्चे देशभक्त नेता के रूप में कुछ वर्ष पूर्व हिन्दी को राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक सब दृष्टियों से राजभाषा बनाने के पक्ष में कितनी प्रबल युक्तियां दी थीं। उनकी उस समय की प्रबल युक्तियों से ही उनकी वर्तमान शोचनीय विचारधारा का निराकरण किया जा सकता है। आप कृपया इसका उचित उपयोग करें और २६ जनवरी सन् १९६५ से हिन्दी के प्रधान राजभाषा बनाये जाने विषयक अपनी प्रशंसनीय घोषणा पर दृढ़ता दिखाएं। असत्य प्रचार के आधार पर दक्षिण में कुछ स्थानों पर किये गये दुर्भाग्यपूर्ण उत्पातों के कारण अपनी उद्घोषित राष्ट्रीयता और देशभक्ति भावना के अनुरूप नीति में परिवर्तन करना और एक विदेशी भाषा को अवधिरहित काल के लिये सहराजभाषा के रूप में प्रचलित रखना मेरे विचार में सर्वथा अनुचित और राष्ट्रीय आत्मसम्मान की भावना के सर्वथा विरुद्ध होगा। आप तो स्वयं महान् देशभक्त और इस समय सौभाग्यवश सर्वोच्च राष्ट्र नेता हैं अतः अधिक लिखना सर्वथा अनावश्यक है। केवल आपका ध्यान आकृष्ट करने के लिये इन पंक्तियों को लिखना उचित समझा है।"

भवदीय विनीत
धर्मदेव विद्यामार्तण्ड
(देवमुनि वानप्रस्थ)
प्रधान केन्द्रीय हिन्दी रक्षा समिति

इसका निम्नलिखित संक्षिप्त उत्तर प्रधानमन्त्री भवन नई देहली से ५ मार्च को मान्य प्रधानमन्त्री जी के अपने हस्ताक्षरों से प्राप्त हुआ।

प्रिय महोदय नमस्कार !

आपका २ तारीख का पत्र और छपा हुआ खुला पत्र दोनों मिले। बहुत धन्यवाद।

आपका
लालबहादुर

हमें इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं कि हमारे प्रधान-मन्त्री जी संस्कृत और हिन्दी के प्रेमी हैं वे सच्चे दिल से :अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन के प्रधान के रूप में संस्कृत का प्रचार और हिन्दी को राजभाषा बनाना चाहते हैं किन्तु उनमें उस दृढ़ता और उग्रता की कुछ न्यूनता प्रतीत होती है जो एक उच्च शासक के लिये आवश्यक है। अपने मन्त्रिमण्डल के दक्षिण भारतीय मन्त्रियों (जिनमें से दो श्री सुब्रह्मण्यम् और अलगेशम् ने दक्षिण भारत में जनवरी १९५४ के अंतिम सप्ताह में हुए उत्पातों के समय केन्द्रीय सरकार के मन्त्रित्व से भी त्याग पत्र दे दिया था। यद्यपि पीछे से उन्होंने उसे लौटा लिया) तथा कुछ अन्य प्रभावशाली लोगों को वे अप्रसन्न नहीं करना चाहते, अतः वे भाषा के सम्बन्ध में सच्ची राष्ट्रीय दृढ़ नीति का अवलम्बन करने में संकोच कर रहे प्रतीत होते हैं। केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री श्री छागला आदि भी दिन रात अंग्रेजी भाषा के महत्त्व पर जितना बल देते हैं उतना हिन्दी के राजभाषा होने पर नहीं अतः देश में

सच्ची राष्ट्रीय भावना को जागृत करने की बड़ी मारी आवश्यकता है।

जो अंग्रेजी पढ़ना चाहते हैं विशेषतः विज्ञान तथा वर्तमान शिल्प उद्योगादि विषयों के छात्र, वे अंग्रेजी पढ़ें किन्तु उसे अनिवार्य रूप में पढ़ाना उचित नहीं है। यह सर्वविदित है कि विद्यालयों, महाविद्यालयों में ६० प्रतिशतक छात्र अंग्रेजी में अनुत्तीर्ण होते हैं। अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम किसी भी स्तर पर रखना छात्रों की मौलिकता को नष्ट करना और उनके समय तथा शक्ति को नष्ट करना है। इतना ही पर्याप्त नहीं है कि हिन्दी को देश की प्रधान राजभाषा घोषित कर दिया जाए किन्तु उसे यथार्थ रूप से इस पद पर प्रतिष्ठित करना तथा उस में कार्यकलाप कराने पर बल देना अत्यावश्यक है। इन १५ वर्षों में इस विषय की पूरी तय्यारी कराई जा सकती थी किन्तु दुर्भाग्यवश इस ओर सरकार की शिथिल नीति के कारण बहुत कम काम हुआ। यह युक्ति कि हिन्दी में कानून, शासन, कार्यालय, विज्ञानादि के उचित शब्द विद्यमान नहीं, आवश्यक पाठ्य पुस्तकें विद्यमान नहीं अतः वे जब तक पूर्णतया तय्यार न हो जाएं तब तक हिन्दी में कार्यकलाप नहीं चलाया जा सकता सर्वथा निस्सार है। यह तो बिल्कुल वैसी ही बात है जैसे कोई कहे कि मैं तैरना तो सीखना चाहता हूँ पर जल में प्रवेश मैं नहीं करना चाहता क्योंकि मुझे तैरना नहीं आता। क्या जल में प्रवेश किये बिना किसी को तैरना आ सकेगा? ऐसे ही जब तक हमारी सरकार हिन्दी को सचमुच राजभाषा के रूप में हिन्दी को प्रतिष्ठित करने का दृढ़ संकल्प करके सब प्रशासकीय कार्य हिन्दी में नहीं शुरू कर देगी तब तक उसमें कभी प्रगति न होगी। जब तक हिन्दी और प्रान्तीय भाषाओं

को शिक्षा का माध्यम न बनाया जाएगा, उन पुस्तकों की मांग ही न होगी तो कौन विद्वान् उनके तय्यार करने में अपने समय, धन और शक्ति को नष्ट करने को तय्यार होंगे ? अतः इन सब लंगड़े बहानों को छोड़कर हिन्दी को सचमुच राजभाषा पद पर प्रतिष्ठित कर देना चाहिये। अंग्रेजी को सहराजभाषा के रूप में रखने से भी हिन्दी की प्रगति नहीं हो सकती अतः अब अधिक से अधिक ५ वर्ष की अवधि उन अधिकारियों के लिये दी जा सकती है जिन्होंने अब तक हिन्दी का अभ्यास नहीं किया यद्यपि यदि वे चाहते तो इन १५ वर्षों में इसका काम-लायक अभ्यास कर ही सकते थे। मुझे लगभग २० वर्ष दक्षिण भारत में रहने का अवसर प्राप्त हो चुका है और वहां की भाषाओं के पर्याप्त अभ्यास के कारण मैं जानता हूं कि उनकी भाषाओं में संस्कृत के शब्द कितनी अधिक मात्रा में विद्यमान हैं, इसके अतिरिक्त वे बहुत ही बुद्धिमान् होतेहैं अतः यदि चाहें तो बड़ी सुगमता से हिन्दी का न केवल काम लायक अभ्यास कर सकते हैं अपितु उसमें प्रवीणता प्राप्त कर सकते हैं जैसे कि बहुत से दाक्षिणात्य नर-नारियों ने प्राप्त कर ली है। केवल एक राष्ट्र और राष्ट्रभाषा की भावना को जागृत करने की आवश्यकता है। १४ प्रान्तीय भाषाओं को राष्ट्रभाषा वा राजभाषा का समान स्थान देना और उनको सार्वजनिक सेवाओं की परीक्षा का माध्यम बनाना भी राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से अनुचित और अव्यवहार्य है।

हमारी राष्ट्रीयता का ह्रास और निष्पक्ष विदेशियों की दृष्टि में पतन

सन् १९४९-५० में जब भारतीय संविधान सभा में यह

राजभाषा का प्रश्न प्रस्तुत था विवाद केवल हिन्दुस्तानी, उर्दू और हिन्दी का था। अंग्रेजी राजभाषा बनी रहे इसका समर्थक उस समय एक भी व्यक्ति न था। यहां तक कि १३ सितम्बर १९४९ को भारतीय संविधान सभा में भाषण करते हुए ऐंग्लो इण्डियन वर्ग के प्रतिनिधि फ्रैंक ऐन्थोनी को भी यह कहना पड़ा कि

"I realise that English can not for many reasons be the national language of the c untry.'

अर्थात् मैं इस बात को अनुभव करता हूं कि अंग्रेजी अनेक कारणों से भारत की राजभाषा नहीं हो सकती। किन्तु आज स्वतन्त्रता के १८ वर्ष बाद भी राजा जी जैसे स्वतन्त्र दल के प्रमुख नेता विद्यमान हैं जो कहते कि—

"Our National prestige has not suffered during these fifteen yearsafter independence and it is not going to be adversely affected if we make no change but go on indefinitely with English. We should drop this superstition that some day, we should give up English."

(Vide 'English for Unity P. 13.)

अर्थात् हमारी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा की स्वतन्त्रता के पश्चात् इन १५ वर्षों में (अंग्रेजी के कारण) कोई हानि नहीं पहुंची और इस पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा, यदि हम कोई परिवर्तन न करें और अवधिरहित काल तक अंग्रेजी में ही अपना सारा कार्य कलाप चलाते रहें। हमें इस अन्धविश्वास का परित्याग कर देना चाहिये कि किसी दिन हमें अंग्रेजी

को छोड़ देना चाहिये। मैं इस प्रकार के विचार को राष्ट्रीयता की दृष्टि से भारतीयों के पतन अथवा राष्ट्रीय भावना के ह्रास का द्योतक समझता हूं। यह कहना भी ठीक नहीं कि इस प्रकार अंग्रेजी को राजभाषा रखने से हमारी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को कोई हानि नहीं पहुंची। मैं अपनी एक सुशिक्षित जर्मन के साथ गत २५ फर्वरी १९६५ को हुई बातचीत का निर्देश करना यहां आवश्यक समझता हूं जिससे स्पष्ट है कि हम अंग्रेजी को राजभाषा के रूप में रखने का आन्दोलन करके किस प्रकार अपने को सुशिक्षित विचारशील विदेशियों की दृष्टि में गिरा रहे हैं। गत २५ फर्वरी को एक जर्मन पत्रकार मि० वुल्फ डोनर्ट, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली में मुझे मिलने आए जहां मैं अपने पत्रकार मित्र चि० भारत भूषण के साथ ठहरा हुआ था। जब मैंने उनसे पूछा कि हमारे देश के कई नेता यह जो आन्दोलन कर रहे हैं कि अंग्रेजी राजभाषा के रूप में अवधिरहित काल के लिये बनी रहे, विदेशी महानुभावों पर उसकी क्या प्रतिक्रिया है तो उन्होंने बिना संकोच के स्पष्ट शब्दों में कहा कि

"This demand for continuing English as an official language for an indefinite period would denote utter lack of national self-respect of Indian people and that English would hamper the growth of Indian languages and culture."

अर्थात् अंग्रेजी को राजभाषा के रूप में निरवधिक काल तक जारी रखने की मांग भारतीयों में राष्ट्रीय आत्मसम्मान के नितान्त अभाव को सूचित करेगी और अंग्रेजी से भारतीय भाषाओं और संस्कृति की उन्नति में बाधा पहुँचेगी।

उन्होंने भारत की भाषा समस्या का समाधान यह प्रस्तुत

किया जिसे सुनकर हमें हर्षमिश्रित आश्चर्य हुआ कि केन्द्र में सभी कार्यों के लिये हिन्दी का प्रयोग हो, प्रान्तों में प्रादेशिक भाषाओं का और अंग्रेजी के लिये कहीं कोई स्थान न हो।

अभी इण्डियन एक्सप्रेस, देहली-संस्करण के १७ अप्रेल १६६५ के अंक में मि० रोमेल और डी० बी० क्लार्क नामक दो अंग्रेज, अध्यापक युवकों का भाषा के प्रश्न पर एक पत्र छपा है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसमें उन्होंने अनुभव के आधार पर लिखा है कि

"English can never become the National language. It is our experience that only those who have now reaped the rewards of knowing English favour its retention and it is impossible to avoid the conclusion that they are attempting to preserve the status quo."

अर्थात् अंग्रेजी कभी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती। हमारा यह अनुभव है कि केवल वही लोग इसको जारी रखने के पक्षपाती हैं जिन्हें इसके कारण लाभ उठाने का अवसर मिला है और हम इस परिणाम पर पहुँचे बिना नहीं रह सकते कि वे ही यथापूर्व स्थिति को रखना चाहते हैं।

आगे हिन्दी भाषियों की संख्या को अन्य भाषा भाषियों की अपेक्षा बहुत अधिक बताते हुए उन्होंने लिखा है कि

"Hindi is the only conceivable language which could ever become all Indian. However to avoid states' separatism, Hindi and not the regional language, must become the medium of instruction."

अर्थात् हिन्दी ही एक मात्र भाषा है जिसकी अखिल भारतीय भाषा बनने की सम्भावना है किन्तु प्रान्तों के पृथक्ता वाद को दूर करने के लिये हिन्दी न कि प्रादेशिक भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना चाहिये।

अंग्रेजी को राजभाषा बनाने के कुपरिणाम को सूचित करते हुए उन दो अंग्रेज शिक्षकों ने पत्र के अन्त में लिखा है कि

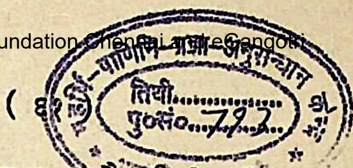
"For Fnglish to remain as the national language would be to rule out the possibility of advance for most of the people."

अर्थात् अंग्रेजी को राजभाषा के रूप में रहने देने का परिणाम अधिकतर जनता की उन्नति की संभावना को रोक देना होगा।

इस पत्र को अपने द्वितीय खुले पत्र के अन्त में उद्धृत करते हुए मैंने श्री राजगोपालाचार्य जी से निवेदन किया है कि इस आंखें खोलने वाले दो निष्पक्ष अंग्रेज युवकों के पत्र के प्रकाश में अपनी स्थिति पर पुनर्विचार करें।

त्रिभाषा सूत्र से संस्कृत को हानि

फर्वरी १९६५ में नई देहली में विविध प्रदेशों के मुख्य-मन्त्रियों का जो सम्मेलन हुआ उसमें पहले एक मुख्यमन्त्रि-सम्मेलन में स्वीकृत भाषात्रय सूत्र को क्रियात्मक रूप देने पर बल दिया गया। यह भाषात्रय सूत्र (Three langague formula) यह है कि प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त हिन्दी, अंग्रेजी और एक अन्य भाषा अवश्य पढ़ाई जाए जिनकी मातृभाषा हिन्दी हो उन्हें एक अन्य भारतीय

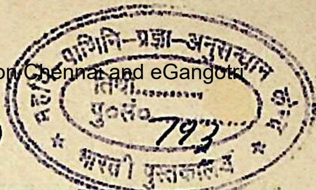


भाषा पढ़ाई जाए। यह अन्य भाषा कौनसी हो इसके विषय में एकमत नहीं। प्रायः यह कहा जाता है कि यह दक्षिण की भाषाओं (कन्नड़, तेलुगु, मलयालम और तामिल) में से कोई एक होनी चाहिये किन्तु यदि इस पर बल दिया जाएगा तो उत्तर प्रदेश, बिहार, देहली, पंजाब आदि अनेक प्रदेशों में अब जो संस्कृत को तृतीयभाषा के स्थान पर पढ़ाया जा रहा है और जिस के कारण षष्ठ, सप्तम, अष्टम, इन तीन कक्षाओं में विद्यार्थियों को सर्वभाषाओं की जननी संस्कृत भाषा का सामान्य बोध हो जाता है वह भी रह जाएगा। हम इसे अत्यन्त हानि कारक समझते हैं। हमारा निश्चित विचार है कि भारत के स्वतन्त्र होने के पश्चात् अंग्रेज़ी का अध्ययन-अध्यापन अनिवार्यरूप से होना अनुचित है। विज्ञानादि के जो विद्यार्थी चाहें, उस का अध्ययन करें इसमें किसी को आपत्ति नहीं। संस्कृत का अध्ययन जो सब भाषाओं की माता है और जिस के शब्द बहुत बड़ी संख्या में सब भारतीय तथा अन्य भाषाओं में पाये जाते हैं अध्ययन सब भारतीय (विशेषतः आर्य हिन्दू) छात्रों के लिये अनिवार्य होना चाहिये। इस से प्रादेशिक भाषाओं का साहित्य भी विकसित होने में बड़ी सहायता मिलेगी तथा प्राचीन धर्म, संस्कृति, सभ्यता इतिहास शिल्प विज्ञानादि का ज्ञान छात्रों को प्राप्त होगा जो इस के बिना असम्भव है। प्राचीन विषयों में अनुसन्धान संस्कृत ज्ञान के बिना सर्वथा असम्भव है अतः चाहे ३ भाषाओं की जगह ४ भाषाओं का सूत्र प्रचलित किया जाए, संस्कृत को न रख कर उसके स्थान पर अन्य भारतीय भाषाओं अथवा अंग्रेज़ी को अनिवार्य बनाया जाए हम इस प्रस्ताव से सहमत नहीं हो सकते। अब तक यही माना जाता था कि भाषात्रय

सूत्र के अनुसार हिन्दी का अध्ययन सब भारतीय छात्रों के लिये आवश्यक होगा किन्तु पिछले दिनों कांग्रेस के अध्यक्ष श्री कामराज ने कहा है कि इस सूत्र के अनुसार हिन्दी का अध्ययन सबके लिये आवश्यक नहीं है। इस को लेकर तंगम नायर नामक दाक्षिणात्य सज्जन ने इन्डियन एक्सप्रेस देहली के २३ अप्रैल १६६५ के अङ्क में एक पत्र प्रकाशित कराया है कि कांग्रेस अध्यक्ष श्री कामराज ने यह जो वक्तव्य कुछ दिन पूर्व प्रकाशित किया है कि हिन्दी का अध्ययन अहिन्दी भाषा-भाषियों के लिये आवश्यक नहीं है, उस का शासकों को पूर्णतया समर्थन करना चाहिये। हमारे विचार में श्री कामराज का यह कथन केवल दक्षिण के भाइयों को प्रसन्न करने के लिये दिया गया है, यह यथार्थता के अनुकूल नहीं। कुछ भी हो, इस भाषात्रय सूत्र पर गम्भीरता से पुनर्विचार की आवश्यकता है ताकि इसके कारण संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन में (जो पहले ही बहुत कम है) बाधा न पड़े। संस्कृत और भारतीय संस्कृति तथा सब अनुसन्धान प्रेमियों को इस विषय में संगठित प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

हिन्दी प्रेमियों का कर्त्तव्य

अन्त में समस्त प्रेमियों का ध्यान मैं इस आवश्यक विषय की ओर आकर्षित करते हुए उनसे अनुरोध करता हूं कि वे राष्ट्रभाषा संस्कृतनिष्ठ हिन्दी को विशेष रूप से अपनाएँ जैसे कि महर्षि दयानन्द ने आदेश दिया था और उस दिन को लाने का पूर्ण प्रयत्न करें जिसके लिये स्वनामधन्य महर्षि ने कहा था कि 'मेरे नेत्र उस दिन को देखने के लिये आतुर हैं जब काश्मीर से कन्या कुमारी तक सब देशवासी एक ही भाषा को बोलने वा समझने वाले होंगे।'



राष्ट्रभाषा हिन्दी के क्रियात्मक प्रचारकों में महर्षि दयानन्द जी का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है जिन्होंने गुजराती मातृभाषा होते हुए भी न केवल अपने सत्यार्थ प्रकाश आदि अमर ग्रन्थ हिन्दी भाषा में लिखे बल्कि रियासतों में हिन्दी को अदालती भाषा बनवाने के अतिरिक्त इस बात का अपने अनुयायियों द्वारा पूर्ण प्रयत्न 'मेमोरियल' आदि भिजवा कर किया कि हिन्दी ही राष्ट्रभाषा के रूप में शिक्षा का माध्यम बने। धर्मवीर स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी में हिन्दी भाषा को विज्ञान, गणित, इतिहास, दर्शनशास्त्र अर्थशास्त्र, इत्यादि सब विषयों की उच्च शिक्षा का माध्यम बनाकर महर्षि की उसी शुभ इच्छा की पूर्ति का अत्यन्त प्रशंसनीय और अनुकरणीय कार्य किया। महात्मा गांधी जी ने भी दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना द्वारा हिन्दी के प्रचार में प्रशंसनीय कार्य किया।

अतः सभी देशभक्त भारतीयों का यह आवश्यक कर्त्तव्य है कि वे इस राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार में पूर्ण क्रियात्मक सहयोग दें। स्वयं हिन्दी का अच्छा अभ्यास करके वे वर्ष में कम से कम १० व्यक्तियों को हिन्दी सिखाने का दृढ़ व्रत लें और यथासम्भव हिन्दी कक्षाओं, रात्रि पाठशालाओं, पुस्तकालयों और वाचनालयों की स्थापना द्वारा इस अपने व्रत की पूर्ति करके पुण्य के भागी बनें।

सौभाग्यवश भारत के संविधान में २६ जनवरी सन १९५० को संस्कृतनिष्ठ हिन्दी भारत की राजभाषा के रूप में सर्वसम्मति से घोषित की जा चुकी है (यह सर्वथा असत्य प्रचार किया जा रहा है कि वह केवल एक बहुमत से स्वीकृत हुई थी)

१५ वर्ष की अवधि इस कार्य के लिये दी गई थी ताकि हिन्दी पूर्णतया अंग्रेजी का स्थान राजभाषा के रूप में ले सके, वह भी समाप्त हो चुकी है अतः समस्त भारतीयों में सच्ची राष्ट्रीयता और जनमत को जागृत करके उसे पूर्णतया इस पद पर प्रतिष्ठित किया जाए इसके लिये सरकार को प्रबल रूप से प्रेरित करना चाहिये। अंग्रेजी को निरवधिक काल के लिये सह राजभाषा के रूप में रखना भी राष्ट्रीय आत्मसम्मान के विरुद्ध और भारतीय भाषाओं के विकास में बाधक है अतः उसको अति शीघ्र (अधिक से अधिक ५ वर्ष की अवधि देकर) समाप्त किया जाए। हिन्दी के साहित्य को वैज्ञानिक, दार्शनिक सब दृष्टियों से समृद्ध किया जाए। सब साहित्यकार इसे अपना राष्ट्रीय कर्तव्य समझकर तत्परता से करें।

मान्य प्रधानमन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्री जी, स्वराष्ट्र मन्त्री श्री गुलजारीलाल जी नन्दा तथा केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के सब सदस्यों तथा प्रादेशिक सरकार के अधिकारियों का कर्त्तव्य है कि संस्कृतनिष्ठ हिन्दी को सचमुच भारत की राजभाषा बना कर अपनी, सच्ची राष्ट्रीयता और देशभक्ति का परिचय दें तथा अपने राष्ट्रीय आत्मसम्मान की रक्षा करें।

धर्मदेव विद्यामार्तण्ड
२७-४-१९६५

आनन्दकुटीर ज्वालापुर
(उत्तर प्रदेश)